मंगलाचरण

स्पन्दकारिका

श्री

स्पन्दकारिका–

- यदि आप स्थाई शान्ति चाहते हों, स्थाई आनन्द चाहते हों,
- यदि आप उस तत्व को जानना चाहते हो जिसको जानने के बाद कुछ भी जानना शेष या बाकी नहीं रहता है तो यह पुस्तक आपके लिए है।
- यदि आप जीवन में सुख, समृद्धि व भौतिक सुख चाहते हो तो भी यह पुस्तक आपके लिए है।
- यदि आप जीवन में सर्वश्रेष्ठ बनना चाहते हो तो यह पुस्तक आपके लिए है।
- यदि आप कम से कम समय में अत्यधिक, आशातीत (जितना आप सोचते हैं उससे अधिक) सफलता चाहते हैं तो यह पुस्तक आपके लिए है।

इसके लिए आपको करना कुछ भी नहीं है, केवल जीवन में ५१ दिन का समय निकालना है, प्रतिदिन केवल एक घण्टा का समय निकालना है, इस पुस्तक को एक श्लोक एक दिन में पढ़ना है, अनुभव करना है।

भूमिका-आपको आपके वास्तविक स्वरूप का बोध कराना है। आप क्या हो?, अपने स्वरूप को जानने के पश्चात सभी समस्या का समाधान हो जाएगा। जब आपको यह पता चलेगा कि सारे संसार के मालिक आप हो तो बहुत बड़ा आश्चर्य होगा तथा आप चक्रवर्ती सम्राट होगे।

उपरोक्त सभी बातें जानना, समझना तथा प्राप्त करना बड़ा सरल हैं, आसान हैं। भले ही आज हमें असम्भव सा या बड़ा कठिन सा मालूम होता हैं, पर वास्तव में है बड़ा सरल। चलो सरल ही कह देते। परन्तु कहा बड़ा सरल, सरल नहीं कहा, क्यों? इसलिए कहा हैं ये स्वभाव हैं, क्योंकि ये स्वाभाविक हैं। कैसे? जैसे कोई कहे कि अग्नि को हम ताप से मिला देते हैं, अग्नि को हम ऊष्मा या गर्मी से मिला देते हैं तो यही कहेंगे ना कि बड़ा सरल हैं, इसमें कौन सी कठिनाई हैं, ऊष्मता या गर्मी तो अग्नि का स्वभाव हैं, उसका स्वाभाविक धर्म हैं। (रुक कर समझें फिर आगे पढ़ें)

वैसे ही मानव-मात्र का यह धर्म हैं, प्रकृति हैं, स्वभाव हैं, कि जो वो संकल्प करें, इच्छा करें वो पूरी हो। शान्ति, आनन्द ये उसका स्वभाव हैं, ये उसके स्वाभाविक धर्म हैं। कहीं बाहर लाकर डालना होता तब तो कठिन भी हो सकता था, परन्तु ये गुण तो मानव-मात्र का धर्म हैं। जैसे चन्दन का धर्म हैं सुगन्ध। तो चन्दन में सुगन्ध बाहर से लाकर डालना नहीं होती हैं, ये तो उसका स्वाभाविक धर्म हैं। अब यदि उस चन्दन को बाहर से लाकर कीचड़ लगाया जाए तो क्या होगा? भले ही चन्दन का धर्म सुगन्ध हैं, परन्तु कीचड़ लगा होने के कारण, दुर्गन्ध आने लगेगी, थोड़ा सा घिस दिया, बस कीचड़ दूर हो गई, सुगन्ध प्रकट हो गई, लाना नहीं पड़ी प्रकट हो गई। (रुक कर समझें फिर आगे पढ़ें)

उसी प्रकार से आपमें अशान्ति, अपूर्णता, अतृप्तता आदि स्वाभाविक नहीं हैं, अज्ञान, अविद्या आदि के कारण हैं। आपको आपका स्वभाव नहीं पता हैं, इसलिए हैं। जैसे ही आप आपके स्वभाव को जान जाएँगे, अपने स्वरूप या स्वभाव में स्थित हो जाएँगे, आपका स्वभाव प्रकट हो जाएगा, आपको पूर्ण शान्ति, पूर्ण तृप्ति की प्राप्ति होगी, सभी कामनाओं या इच्छाओं की पूर्ति हो जाएगी।

इस प्रकार अनुभव करने के लिए, पहले उसका सिद्धान्त समझना होगा, उसका सैद्धान्तिक पक्ष समझ कर प्रयोग करेगे तो विषय जल्द ही या शीघ्र ही आपको स्पष्ट हो जाएगा।

पहले एक सत्य को समझें कि जगत, हमें दिखता बाहर हैं, पर हैं हमारे अन्दर। हमारा सारा जगत हमारे अन्दर हैं, परन्तु वह हमें बाहर दिखाई हेता हैं। वास्तव में बाहर कोई जगत हैं ही नहीं।

चूँकि जितना भी अपना अभी तक का अनुभव हैं, यह बात उसके विपरीत हैं, विरुद्ध हैं, इसलिए उसको थोड़ा अच्छे

से या विस्तार से समझेगे।

जैसे इस समय इस लेख, पुस्तक या पत्रिका को आप पढ़ रहे हैं, अब यदि हिन्दी भाषा तथा शब्दों का, अर्थ का ज्ञान आपको हैं, तो यह लेख आपको समझ में आ रहा हैं। यदि भाषा ज्ञात नहीं हैं, तो नहीं पढ़ सकते हैं। जिसे पता हैं हिन्दी के अक्षर ऐसे होते हैं तो वह कहेगा हिन्दी में कुछ लिखा हैं। जैसे यदि बातें ब्राह्मी लिपि या शारदा लिपि में लिखीं हो तो अधिकांश व्यक्ति यही कहेंगे कि पता नहीं किस भाषा या लिपि में पता नहीं क्या लिखा हैं। तो देखो भाषा या लिपि का ज्ञान अन्दर हैं पर दिखता बाहर हैं। (रुक कर समझें फिर आगे पढ़ें)

दूसरा उदाहरण देखें, जैसे सोने का कोई आभूषण हैं बजट्टी। अब जिसको सोने की धातु का ज्ञान हैं, उसे सोना दिखेगा तथा वह कहेगा कि सोने का कोई आभूषण हैं। जिसे गले में पहनते हैं। जिसे नाम मालूम हैं, वह कहेगा कि सोने की बजट्टी हैं। तो अर्थ निकला, कि जितना ज्ञान हमारे अन्दर हैं, वही बाहर दिखता हैं। (रुक कर समझें फिर आगे पढ़ें)

एक और उदाहरण देखें

जैसे सड़क पर कोई कार जा रही हैं, यदि किसी को कार का ज्ञान हो, तो कहेगा कि कार जा रही हैं। जिसे ब्राण्ड पता हैं वह कहेगा मारुति कार जा रही हैं। जिसे और ज्ञान हैं वह कहेगा कि मारुति-८०० जा रही हैं, तो देखो सारा ज्ञान जो हमारे अन्दर हैं, वही बाहर दिखता हैं।

इसी प्रकार सुन्दर-कुरूप-अपमान, सुख-दुःख, ऊँच-नीच, धनवान-गरीब ये सारा ज्ञान यदि हमारे अन्दर हैं तो ही हमें बाहर दिखाई देता हैं।

तो सारांश क्या निकला कि सारा जगत अपने अन्दर हैं, भीतर ही हैं, बाहर केवल मालूम होता हैं।

तो अभी एक बात समझी, कि अपना जगत अपने अन्दर हैं, परन्तु दिखता बाहर हैं। अपने ज्ञान से बाहर कोई सृष्टि या जगत नहीं हैं। जितना बड़ा अपना ज्ञान है, उतनी ही बड़ी या व्यापक अपनी दुनिया या सृष्टि है।

अब एक और बात समझने का प्रयास करेंगे कि ये जो सारा जगत हैं, वह अपना ही वैभव है, भले ही हमें आज मालूम नहीं हो रहा है, परन्तु है अपना ही वैभव। अपना ही ऐश्वर्य है।

यह अपना ही वैभव या ऐश्वर्य हैं, इसे समझने के लिए अपने को तीन शब्दों को समझना होगा–सृष्टि, पालन एवं संहार।

यह जो सारा जगत है, उसमें एक क्रम चलता है उत्पन्न होना, उसके कुछ समय पश्चात् समाप्त हो जाना। तो सृष्टि होना अर्थात् उदय होना, उत्पन्न होना, पैदा होना। पालन होना अर्थात् पैदा होने के बाद कुछ काल या समय तक रहना तथा संहार अर्थात् समाप्त हो जाना, लीन हो जाना, लय या प्रलय हो जाना। फिर सृष्टि, पालन, संहार समाप्त हो जाना, लीन हो जाना, लय या प्रलय हो जाना। फिर सृष्टि, पालन, संहार फिर सृष्टि, पालन, संहार, पुनः सृष्टि, पालन, संहार यह एक चक्र चल रहा है। (रुक कर समझें फिर आगे पढ़ें)

इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण से देखेंगे। जैसे मानो कि मिट्टी का एक ढेला है या पौधा है, उसका हमने एक हाथी बनाया तो क्या हुआ हाथी पैदा हो गया (मिट्टी का)। इसी प्रकार जितनी देर हमारी इच्छा हुई, वह हाथी रहा, उसका पालन हुआ, फिर जब हमारी इच्छा हुई, हाथी को समाप्त कर, यह संहार या लय हुआ फिर हमारी इच्छा हुई तो हमने उसी मिट्टी का घोड़ा बनाया तो घोड़े की सृष्टि हुई, जितनी देर घोड़ा रहा, पालन हुआ फिर मिटा दिया तो संहार हुआ, इस प्रकार से एक क्रम को जाना, सृष्टि, पालन व संहार। (रुक कर समझें फिर आगे पढ़ें)

अब इसे अपने अनुभव से बैठाते हैं। अब आप बैठे हैं, आपके मन में कोई विचार चल रहा है। माना कि पुत्र का विचार चल रहा है या पुत्र का विचार शुरू हुआ तो क्या हुआ कि पुत्र से संबंधित जगत का उदय हो गया। तो विचार चल रहा है कि आपका पुत्र पाँच वर्ष का है, स्कूल जाता है, स्कूल का यह नाम है, इस कक्षा में अध्ययन करता है, ये-ये उसके मित्र हैं। ये-ये उसके शिक्षक-शिक्षिकाएँ हैं, वह ऐसा पढ़ता है या ऐसी मस्ती करता है आदि-आदि। तो ये सब पुत्र से संबंधित जगत का पालन हुआ। फिर पुत्र का विचार समाप्त हुआ तो पुत्र से संबंधित जगत का लय हुआ, संहार हुआ। अन्य विचार आरंभ हुआ, मान लो पत्नी का या कार का। तो पत्नी या कार से संबंधित जगत उत्पन्न हुआ, उसका पालन हुआ, संहार हुआ। बस यही एक क्रम चल रहा है।

अच्छा अब यह बताओ कि पुत्र के विचार को पैदा किसने किया? आपने। अच्छा इसका पालन किसने किया? आपने। और संहार किसने किया? आपने। अच्छा इसी प्रकार पत्नी के विचार की सृष्टि, पालन व संहार आपने किया। प्रत्येक विचार

से सम्बन्धित जगत की सृष्टि, पालन, संहार आप करते हो।

तो अभी तक दो बात हम ने समझी या जानी, पहली तो ये सारा जगत हैं हमारे अन्दर, परन्तु दिखता बाहर हैं। दूसरी बात यह जानी कि सारे जगत (विचार) की सृष्टि, पालन व संहार हम ही करते हैं। तो यह अपना वैभव या ऐश्वर्य हुआ, अपनी ही सम्पत्ति हुआ, परन्तु ऐसा अनुभव में तो नहीं आ रहा हैं कि इस सारे जगत के मालिक हम हैं। यदि यह सारा जगत हमारा वैभव हैं, ऐश्वर्य हैं, हम इसके मालिक हैं तो ऐसा अनुभव में भी आना चाहिए। (रुक कर समझें फिर आगे पढ़ें)

आइए अब इसके कारण का अध्ययन करें।

माना कि आप स्वप्न में कही जा रहे हैं, पैदल जा रहे हैं, रास्ते में एक कुत्ता पीछे लग गया और आप भाग रहे हैं। तो देखो, ध्यान से देखो कि आप हो, रोड़ के किनारे वृक्ष या पेड़ हैं, अन्य लोग भी हैं तथा कुत्ता भी है। थोड़ा और ध्यान से समझेंगे तो पाएँगे कि आप सभी को देख रहे हैं, यहाँ तक कि आप अपने आपको भी देख रहे हो। आप अपने आपको भागते हुए देख रहे हो।

थोड़ा सा और अधिक केन्द्रित होकर देखेंगे, समझेंगे तो पाएँगे कि स्वप्न का सारा जगत आपका हैं, आपके अन्दर ही हैं, आपसे बाहर कुछ भी नहीं है। वह सारा आपका ही वैभव है, ऐश्वर्य है। स्वप्न को रोड़, मकान, पेड़, कुत्ता सब आपके द्वारा ही बनाए गए हैं, उसमें आपने एक आकृति विशेष अपनी भी बना रखी हैं, और कहा कि यह मैं हूँ। बस जैसे ही एक आकृति विशेष को मैं माना, ताकि सब अलग हो गया, अब कुत्ता अलग हो गया। आप जो सारे दृश्य में व्यापक थे, एक आकृति विशेष में सीमित हो गए। अब उस आकृति विशेष के सुख-दुःख, मान-अपमान, लाभ-हानि में अपने में सुख-दुःख, मान-अपमान, लाभ-हानि मानने लगे, अनुभव करने लगे। (रुक कर बहुत अच्छे से समझें फिर आगे पढ़ें)

इसी प्रकार जब आप बैठे-बैठे कुछ विचार करते हैं तो विचार का सारा जगत, विचार में आने वाले सारे जगत के मालिक हैं, स्वामी हैं। विचार का सारा जगत आपका वैभव है, परन्तु आपने विचार के सारे जगत में अपनी भी एक आकृति बना रखी है, अपना भी एक रूप बना रखा हैं, उसे मान रखा हैं कि यह मैं हूँ। अपनी पूर्ण अहंता, जो कि व्यापक बना रखा हैं, उसे सीमित कर दिया, एक आकृति या रूप विशेष में संकुचित कर दिया, सीमित कर दिया, तो बाकि सब अलग हो गया, तो विचार का सारा जगत मेरा ही ऐश्वर्य है, मेरा ही वैभव है उसका भान नहीं रहा, होश नहीं रहा। फिर समझें ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि हमने अपने आपको एक आकृति विशेष में सीमित कर रखा हैं, ये सीमित अहंता छूट जाए तो अपना जो वैभव है वह प्रकट हो जाएगा। जैसे चन्दन से कीचड़ छूटा तो सुगन्ध प्रकट हो गई। (रुक कर समझें फिर आगे पढ़ें)

अब आप शंका उठा सकते हो कि चलो स्वप्न में, और विचार के जगत में तो आपकी बात सच मालूम भी हो सकती हैं, परन्तु जाग्रत अवस्था के जगत में न तो ऐसा मालूम होता हैं, न ही अनुभव में आता हैं। इस सारा जगत अपना ही ऐश्वर्य या वैभव है, अपने ही संकल्प से पैदा हुआ है ऐसा अनुभव में तो नहीं आता।

यही बात तो जानना हैं इसीलिए तो हम यह लेख पढ़ रहे हैं, लेख पढ़कर या कैसेट सुनकर या वीडियो देख कर अभ्यास भी करेंगे।

अच्छा बताओ भगवान ने स्वप्न क्यों बनाया? हम जगते कार्य करते, कार्य करने के उपरान्त सो जाते, उठकर पुनः कार्य करते। ये बीच में स्वप्न बनाने की क्या आवश्यकता थी। जाग्रत अवस्था को समझाने के लिए, स्वप्न बनाया। स्वप्न से उठकर जाग्रत अवस्था में जानता है कि नींद में जो देखा वो सपना था। इसी प्रकार जाग्रत अवस्था अपना वैभव है यह कब पता चलेगा, जब सीमित अहंता छोड़ देगा। जब एक आकृति विशेष को मैं मानना छोड़ देगा, तो सारा जगत मेरा वैभव यह समझ में भी आएगा और अनुभव में भी आएगा। तभी तो संकल्प करना हैं कि इस देह की आँख खुल जाए, बन्द हो जाएँ तो आँख खुलती व बन्द हो जाती हैं। जब सीमित अहंता छोड़ देगा तो जिस देह का वस्तु के बारे में संकल्प करेगा, घटित होगा।

इसी बात को कारिका में कहा हैं।

यस्योन्मेष निमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ।

तं शक्तिचक्र विभव प्रभवं शंकरं स्तुमः।।१।।

जिनके नेत्र खोलने से जगत का संहार तथा नेत्र बन्द करने पर जगत की उत्पत्ति हो जाती है जो इस सृष्टि, पालन, संहार अर्थात् शक्तिचक्र के ऐश्वर्य के स्वामी हैं, शंकर हैं, उसके चरणों में मैं अपनी सीमित अहंता समर्पित करता हूँ।

इस कारिका के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि आप ही शिव हो, क्योंकि जब आप किसी विषय में विचार आरंभ करते हैं तो विषय से संबंधित जगत की उत्पत्ति हो जाती है, जब विचार समाप्त करते हैं तो जगत लय को प्राप्त हो जाता है तथा इस शक्ति चक्र के स्वामी आप स्वयं हैं, जब आप अपने शिव स्वभाव में जग जाँएगे तो इस ऐश्वर्य का आपको बोध होने लगेगा, यह संसार आपको अपना ऐश्वर्य मालूम होगा।

यहाँ नमस्कार के द्वारा अपनी सीमित अहंता का समर्पण है।(रुक कर समझें फिर आगे पढ़ें)

अभ्यासः-

अब आप विचार करना प्रारंभ करें, जैसा हम बताएँ उस प्रकार का विचार करें।

आप पहाड़ का विचार करें। (३० सेकेन्ड्स)

अब आप नदी का विचार करें (३० सेकेन्ड्स)

अब आप कार का विचार करें (३० सेकेन्ड्स)

आप पिता का विचार करें (३० सेकेन्ड्स)

अनुभव अब आप देखों कि पहाड़ के विचार को पैदा करने वाला कौन है?.....

पहाड़ के विचार का पालन किसने किया?.....

पहाड़ के विचार को किसने समाप्त किया?.....

नदी के विचार को पैदा करने वाला कौन है?.....

नदी के विचार का पालन किसने किया?.....

नदी के विचार को किसने समाप्त किया?.....

कार के विचार को पैदा करने वाला कौन है?.....

कार के विचार का पालन किसने किया?.....

कार के विचार को किसने समाप्त किया?.....

पिता के विचार को पैदा करने वाला कौन है?.....

पिता के विचार का पालन किसने किया?.....

पिता के विचार को किसने समाप्त किया?.....

तो सारे विचारों को पैदा करने वाला कौन?

सारे विचारों का पालन करने वाला कौन?

सारे विचारों को समाप्त करने वाला कौन?

आप तो सभी विचारों की उत्पत्ति, स्थिति व लय आपसे होता है , आप ही इस सारे चक्र के मालिक हैं। इस बात का अनुभव करो।

अब आप यह भी सोच सकते हो कि इन विचारों को आपने पैदा किया इसलिए आप इसके मालिक हुए, परन्तु आप सभी विचारों को पैदा नहीं करते हो आप उनके मालिक कैसे हुए।

इसे ऐसे भी देख सकते हो कि अभी आप पर आपका नौकर शासन करता चला आ रहा है, अभी आप बहाव के साथ बहते रहे हैं, आज से ही जाने की सारे विचारों का मालिक आप हैं।

आज का मन्त्र है कि इस विचार की उत्पत्ति, स्थिति व संहार करने वाला मैं हूँ।

आज दिन भर में अधिक से अधिक बार जो विचार चल रहा है उसको देखते हुए इस मन्त्र को दोहराएँ।

उपरोक्त का अनुभव कर आगे बढ़े। अस्तु

प्रत्येक पेराग्राफ को पढ़कर, दोबारा पढ़ें, उसको समझें, तब आगे बढ़ें।

यत्र स्थितमिदं सर्वं कार्यं यस्माच्च निर्गतम्।

तस्यानावृतरूपत्वान्न निरोधोऽस्ति कुत्रचित्।।२।।

श्लोक का अर्थ-जहाँ पर स्थित होकर सारा का सारा कार्य हो रहा है चल रहा है, उसका स्वरूप अनावृत (उघाड़ा हुआ है, ढका हुआ नहीं है) है, उसके स्वरूप का निरोध किसी भी प्रकार से हो नहीं सकता है।

व्याख्या-उदाहरण के लिए जैसे सिनेमा का जो पर्दा (स्क्रीन) है उस पर जो भी दृश्य चल रहा है वह दृश्य पर्दे को बाधित नहीं कर सकता (ढक नहीं सकता है, पर्दा ही ढक जाएगा तो चित्र कैसे दिखाई देगा), क्योंकि पर्दे को देखे बिना आप चित्र नहीं देख सकते हैं, जब आपको चित्र दिख रहा है तब पर्दा भी आपको दिख रहा है। परन्तु आपका ध्यान, आपकी दृष्टि चित्र पर है, पर्दे पर नहीं है। समझें, तब आगे बढ़ें।

पर्दा को अपने यहाँ चित्त या मन कहा है। आपको दो बात समझाना है, कि एक पर्दा है और एक चित्र है। पर्दा अलग है तथा चित्र अलग है। पर्दा एक ही रहता है हमेशा, चित्र बदलता रहता है। चित्र आने-जाने वाला है, पर्दा स्थाई है। समझें, तब आगे बढ़ें।

आइए विषय को थोड़ा गहराई से समझने का प्रयास करें। एक पर्दा है, दूसरा चित्र है। पर्दा एक ही रहता है चित्र बदलता रहता है। ठीक। पर्दा, चित्र को सत्ता प्रदान करता है। जगह देता है। अब एक शब्द आ गया सत्ता प्रदान करता है तो इसका अर्थ क्या हुआ। आइए पहले सत्ता शब्द को समझें।

एक उदाहरण के द्वारा देखने का प्रयास करते हैं। जैसे चाँदी की अँगूठी है। अँगूठी वास्तव में चाँदी है, चाँदी की एक विशेष प्रकार की बनावट या आकार है, ठीक। तो अँगूठी की सत्ता क्या है, अँगूठी का अस्तित्व किससे है, तो चाँदी से है। अर्थात् जिससे चीज का अस्तित्व होता है वह है सत्ता।

तो चित्र को सत्ता कौन दे रहा है-पर्दा। समझें, तब आगे बढ़ें।

अब मान लो पर्दे में जान आ जाए, (शास्त्र में भाषा में कहें तो पर्दा, चेतन हो जाए) तो क्या होगा वह पर्दा, चित्र को सत्ता भी देगा तथा जानेगा भी कि कौन सा चित्र पर्दे पर है।

हम फिर दोहराते हैं कि यदि पर्दे में जान आ जाए तो पर्दा, चित्र को जगह भी देगा (सत्ता भी देगा) तथा कौन सा चित्र चल रहा है इसे जानेगा भी।

पहले जब जान नहीं थी तो पर्दा केवल सत्ता देता था। जानता नहीं था। अब हमने माना कि पर्दे में जान भी है, तो पर्दा, चित्र को सत्ता भी देगा तथा जानेगा भी।

बस अब एक और कल्पना कर लो, अब पर्दा यदि अपने आप को पर्दा न मान कर चित्र मान ले तो क्या होगा। सोचो.....समझें, तब आगे बढ़ें।

जब पर्दा अपने आप को पर्दा न माने, जो कि वास्तव में वह है और चित्र मान ले तो क्या होगा, अच्छा चित्र आने पर वह (पर्दा) सुखी या खुश होगा, बुरा चित्र आने पर वह (पर्दा) नाराज या दुःखी होगा, बाढ़ का चित्र आने पर अपने आप को भींगा हुआ या गीला महसूस करेगा, आग का दृश्य आने पर अपने आप को जलता हुआ महसूस करेगा।

पर्दे के बारे में विचार करने पर तो समझ में आता है, पर्दे की मूर्खता पर हसीं भी आ सकती है।

अपने आप के बारे में सोचो तो सारे जगत को, विचार को आप (आपका मन) सत्ता दे रहे हैं, जान रहे हैं (प्रकाशित कर रहे हैं)।

यहाँ आप देख सकते हैं कि पर्दा अर्थात मन । चित्र अर्थात मन में उठने वाले विचार। आप विचार को सत्ता भी देते हैं, तथा जानते भी है। आपका काम केवल सत्ता देना और जानना है, जैसे पर्दा किसी भी काल में चित्र नहीं हो सकता, वैसे ही आप

भी कभी भी विचार नहीं हो सकते। परन्तु विचार के साथ संबंध बनाने पर आप सुखी, दुःखी, शान्त-अशान्त, प्रसन्न-नाराज हो सकते हैं या होते हैं।

इसी प्रकार एक मन है, दूसरा मन में उठने वाले विचार हैं। मन एक ही है, विचार बदलते रहते हैं। आप कभी भी विचार नहीं हो सकते।

इसी प्रकार आपके चित्त पर, मन पर कोई विचार आया तो भले ही आपको भाव या विचार दिख रहा है परन्तु वहाँ भी आपका स्वरूप (पर्दा, स्क्रीन) है। आपके बिना विचार नहीं हो सकता। पर्दे के अस्तित्व के बिना, चित्र नहीं हो सकता।

पर्दे को देखे बिना, आप चित्र को नहीं देख सकते। परन्तु जब भी आप पर्दे को देखते हैं तो आपको चित्र दिखता है। आपको दृष्टि, पर्दे पर टिकाना है।

जब भी मन को देखने जाते हैं, आपको विचार ही दिखता है, मन नहीं दिखता है। आगे विधि बताए कि किस प्रकार मन को देखना, अभी तो यह जान लें कि एक मन है तथा दूसरा मन में उठने वाले विचार, ये दोनों अलग-अलग हैं।

एक और उदाहरण के द्वारा देखने का प्रयास करें। कई उदाहरण देख सकते हैं किसी भी प्रकार से बस बात समझ में आ जाए।

जैसे हमने एक अँगूठी देखी, उसके बाद उसे नथनी बनते देखा, फिर वह पायजेब बनी, फिर नाक का काँटा बनी, फिर चूड़ी बनी, बिछिया बनी आदि-आदि। अब यदि हमारी दृष्टि आभूषण पर है तो आभूषण पैदा या उत्पन्न व नष्ट होता है। यदि हमारी दृष्टि धातु या सोने या चाँदी पर पर है तो वह जैसा का वैसा ही है केवल रूप का परिवर्तन हो रहा है। चाँदी पहले भी थी , आज भी है आगे भी रहेगी, आभूषण बदलता रहता है। उत्पत्ति विनाशवान है।

वैसे ही आपका स्वरूप वही है, केवल विचार बदलते रहते हैं। यदि आपने अपने आप को विचार माना, तो सुखी-दुःखी होंगे, शरीर माना तो पैदा होना व मरना मानेगा। आप विचारों के दृष्टा हैं, देखने वाले हैं।

जब आप शान्त बैठे हैं मन में कोई विचार नहीं है तब भी आप रहते हैं। अब मान लो मन में कोई संकल्प उठा, विचार उठा, वृत्ति उठी तो आपको विचार दिखा, सुख का या दुःख का या कामना का, वह विचार पर्दे पर दिखने वाले चित्र के समान है। चित्र, पर्दे पर कोई प्रभाव नहीं डालता। जैसे बाढ़ का चित्र होने पर पर्दा नहीं भीगता, आग का चित्र होने पर पर्दा नहीं जलता, ठीक उसी प्रकार सुख, दुःख, पुत्र, कामना आदि का विचार होने पर स्वरूप प्रभावित नहीं होता, वह तो जैसा है वैसा ही रहता है। केवल हमारी बुद्धि यदि यह मान ले कि हम विचार हैं तो हम सुखी या दुःखी होते हैं। बस फर्क यही है कि माना क्या, आपने अपने आप को क्या माना यदि विचार अर्थात् चित्र माना, तब तो आप सुखी दुःखी होंगे, यदि पर्दा माना जो कि आप हो ही, तो पर्दे का सुख, दुःख से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अन्य किसी के पुत्र के मरने पर, सामान चोरी होने पर आपको उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना की स्वयं के नुकसान होने पर पड़ता है, यहाँ मानने का ही तो फर्क है कि किसको आपने अपना माना, जिसको अपना माना उसके बनने बिगड़ने पर आपको सुख दुःख होता है।

तो श्लोक कहता है कि

यत्र स्थितमिदं सर्वं कार्यं यस्माच्च निर्गतम्।

तस्यानावृतरूपत्वान्न निरोधोऽस्ति कुत्रचित्।।२।।

जहाँ पर स्थित होकर (पर्दे पर) सारा कार्य हो रहा है (सारे चित्र दिख रहे हैं) उसका स्वरूप (पर्दा) कहाँ ढका है? वह किसी भी प्रकार से ढक नहीं सकता है, क्योंकि वह ढक जाए तो चित्र कैसे दिखेगा।

जहाँ पर स्थित होकर (मन पर) सारा कार्य हो रहा है (सारे विचार दिख रहे हैं) उसका स्वरूप (मन) कहाँ ढका है।

(यहाँ हमारा मन से यह तात्पर्य उस मन से है, जिस मन में कोई विचार न हो, जो पर्दा के समान है, उसे स्वरूप कहा है।)

अभ्यास-पहले अभ्यास की आवश्यकता या महत्व को देखें। जैसे कोई बच्चा स्कूल में पढ़ता है, उसे स्कूल के वार्षिक उत्सव में भाग लेना है, कोई नाटक या डांस का प्रोग्राम देना है। माना कि डांस करना है, किसी गाने पर। तो पहले उसकी ट्रेनिंग

होती है, यदि पूरा ग्रूप डांस कर रहा है तो पूरे ग्रूप को कुछ दिन टीचर ट्रेनिंग देती है एकबात। दूसरी बात कुछ दिन के बाद उनकी ड्रेस रिहर्सल होती है, जिसमें बच्चे डांस की ड्रेस पहनकर रिहर्सल करते हैं। उसके बाद संभवतः अगले दिन एक्चूअर कन्डीशन मंच, लाईट आदि में रिहर्सल होती है। उसके बाद प्रोग्राम होता है। यह सारी रिहर्सल अभ्यास कहलाती है।

हमारी भारतीय सेना भी वर्षो से लगातार अभ्यास करती है। युद्ध का अभ्यास। पाकिस्तान के साथ युद्ध (पूरा) १९७१ में हुआ था, परन्तु उसके बाद भी अभ्यास आज भी लगातार चलता रहता है, क्योंकि युद्ध के समय सैनिक ठीक प्रकार से युद्ध कर सकें।

ठीक इसी प्रकार हमें जब क्रोध की, आवेश की, ईर्ष्या आदि की स्थिति आए, उससे पहले ही उनसे निपटने का अभ्यास कर लेना चाहिए। उस स्थिति को समझ लेना चाहिए। ताकि उस स्थिति में भी हम सामान्य रह सकें। स्थिति के गुलाम होकर नहीं। होश खोकर नहीं। होश को खोने का अर्थ यह है कि भूल जाना कि हम पर्दा है, चित्र नहीं। हम विचार को देखने वाले हैं, विचार नहीं।

तो आइए थोड़ा अभ्यास करें-

जो स्थिति आपने पर्दे व चित्र की समझी, उसका अभ्यास करें। किसी कारण से ऐसी परिस्थिति निर्मित करें कि क्रोध आए, जैसे किसी व्यक्ति (माता, पिता, पति या पत्नी या बच्चे को इस खेल में शामिल करें) को कहें कि आप कोई ऐसा काम करें (पाँच मिनिट या इससे कम का समय दें) जिससे मुझे (आपको) क्रोध आए। उसको खेल समझा दें कि जब आप कहें तो वह रूक जाए, वह क्रोध दिलाना बन्द कर दें)। जब आपको क्रोध आना शुरू हो तो खेल को रोक दें, तथा उस समय मन को देखें कैसे क्रोध आया, क्रोध दृश्य के समान है, चित्र के समान है, आप क्रोध को देख रहें हैं। ऐसा अभ्यास भी कर सकते हैं जिसमें आप प्रसन्न हो, खुश हों, इस स्थिति में भी रूक जाए तथा देखें कि यह मन की एक अवस्था है। एक चित्र की तरह है। इस अभ्यास को दोहराएँ।

तो आज के अभ्यास में हमने विचारों को गहराई से देखना सीखा। पिछले श्लोक के अभ्यास में हमने यह जाना था कि विचारों का उत्पत्ति, पालन व संहार मैं करता हूँ, मुझसे ही विचार उत्पन्न होते हैं। अस्तु

श्री

अभी तक हमने यह जाना, समझा व अनुभव किया कि

- हमसे (हममें) ही सारे विचार उठते हैं, स्थित रहते हैं तथा लीन होते हैं अर्थात हम ही विचार की उत्पत्ति, स्थिति व संहार करते हैं।(पाठ १ में बताया है।)
- हम व विचार अलग है। विचार हम नहीं है, बल्कि हम विचार को अस्तित्व (सत्ता) प्रदान करते हैं तथा प्रकाशित करते (देखते) हैं। (पाठ २ में बताया है।)

अब उसी बात को पाठ ३ में और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि

जाग्रदादिविभेदेऽपि तदभिन्ने प्रसर्पति।

निवर्तते निजान्नैव स्वभावादुपलब्धृतः।।३।।

आपका स्वरूप जाग्रत, स्वपन, सुषुप्ति आदि भेद सभी को सत्ता दे रहा है, जैसे पर्दा सभी प्रकार के दृश्यों को सत्ता देता है, वैसे ही आपका स्वरूप सभी अवस्था को सत्ता दे रहा है, वह केवल सत्ता दे रहा है, प्रकाशित कर रहा, उसका स्वरूप कहीं गया नहीं है वह तो उपलब्ध ही है, जब पर्दा उपलब्ध है तभी तो चित्र दिखाई दे रहा है, उसी प्रकार आपका स्वरूप है उसी के अन्तर्गत जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्था को वह प्रकाशित कर रहा है।

यहाँ तीन अवस्था की बात आई, तो पहले इन तीन शब्द या अवस्था को समझें। एक अवस्था है जाग्रत-जिसमें हम जागते हैं, पढ़ना, लिखना, बोलना, स्थूल इन्द्रियों के माध्यम से व्यवहार करते हैं। आँख से देखते हैं, कान से सुनते हैं, जीभ से स्वाद लेते हैं, त्वचा से स्पर्श करते हैं, छूते हैं, नाक से सूँघते हैं। मुख से बोलते हैं आदि। यह हुई जाग्रत अवस्था।

दूसरी अवस्था को कहा कि स्वप्न अवस्था। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है-स्वपन। अपनापन तो जो अपने अन्दर है उसे नींद

में देखते हैं। यह सबका अनुभव है, इसे आप सब जानते हैं।

तीसरी अवस्था को कहा सुषुप्ति की अवस्था। यह अवस्था गाढ़ी नींद की अवस्था है। इस अवस्था में नींद में जब आप कोई स्वप्न नहीं देखते हैं, वह अवस्था सुषुप्ति की अवस्था कहलाती है।

जाग्रत अवस्था को आपने जाना कि मैं जग रहा हूँ। स्वप्न अवस्था को आपने जाना कि मैंने सपना देखा था, उसी प्रकार सुषुप्ति को भी आपने जाना कि मैं ऐसी नींद में था जिसमें कोई सपना नहीं था, इन सब अवस्थाओं को आपने जाना, इन सब अवस्थाओं में आप थे, तभी तो आपने जाना, आप वहाँ नहीं होते, तो नहीं जानते । ये सब अवस्था आपसे हैं, आप इनसे नहीं हो, इन सब अवस्था को आप प्रकाशित करते हो।

उदाहरण के लिए सोने में सब अवस्था या आभूषण हैं, सोने पहले अँगूठी था, अब नथनी है मान लो आगे टीका बनेगा परन्तु सोना तो वही है, पहले भी था, आज भी है आगे भी रहेगा, तो सभी आभूषण में सोना था, है और रहेगा। अँगूठी अवस्था स्थाई नहीं है।

उसी प्रकार आपमें जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था होती है आप इनको प्रकाशित करते (जानते) हैं।

ऊपर कहे गए उदाहरण को पुनः देखने का प्रयास करें। सोना किसी समय अँगूठी था, जब अंगूठी थी तब भी सोना था, सोना जानता है कि मैं ही अँगूठी हूँ। अब सोना नथनी बना, तो चूँकि सोना अपने को जानता है तो वह जानता है कि इस समय मैं नथनी हूँ, पहले मैं अंगूठी था, दोनों समय सोना था, इसलिए सोना कह सकता है कि मैं पहले अंगूठी था, अब नथनी हूँ। ठीक है, समझ में आया।

अंगूठी अब नहीं है इसलिए नथनी को यह नहीं पता है कि मैं पहले अंगूठी थी। (जब तक कि नथनी अपना वास्तविक स्वरूप (सत्ता) को न जाने, यह न जाने कि मैं सोना हूँ, तब तक यह नहीं कह सकती कि मैं ही पहले अंगूठी थी।)।

इसी प्रकार आगे मानो कि वह टीका बनी तो सोना यह जानता है कि पहले मैं ही अँगूठी था, अब नथनी हूँ तथा बाद में टीका बना।

ठीक इसी प्रकार अभी जब आप जग रहे हो, तो यह जानते हो कि मैं जग रहा हूँ।

जब आप सपने में हो तो सो कर उठने के बाद जानते हो कि मैं पहले सपने में था।

इसी प्रकार सुषुप्ति (गाढ़ी नींद) से उठने के बात जानते हो कि मैं गाढ़ी नींद में था तथा मैं सुख पूर्वक सोया।

तो देखो जगने को भी आप जानते हो, सपने को भी आप जानते हो, सुषुप्ति को भी आप जानते हो, तो तीनों अवस्था में आप थे। तभी तो आप जानते हो। आप हमेशा जानने वाले ही होगे, कभी भी अवस्था नहीं हो सकते। जो (अवस्था) आप किसी भी काल में हो नहीं सकते वही आपको मालूम हो रहा है कि मैं अवस्था हूँ। बस इसी का नाम माया है।

जैसे अँगूठी को भी सोना जानता है, नथनी को भी सोना जानता है, तथा टीके को भी सोना जानता है, सोना तीनों अवस्था में था , तभी तो जानता है, उसी प्रकार आप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्था में थे। तीनों अवस्था को जानते हैं।

ये तीनों अवस्था हैं, आप तीनों अवस्था को जानने वाले हैं।

जैसे पर्दा सभी चित्र को जानता है, वैसे ही आप सभी अवस्था को जानते हैं, जैसे पर्दा चित्र नहीं है, वैसे ही आप अवस्था नहीं हो।

आप अवस्था को जानने वाले हो।

तुम्हारे प्रश्न का समाधान-कोई विचार आपको आया जो विचार आप नहीं चाहते हो वह विचार आया यही बात है ना।

समाधान- यहाँ हम बात बता रहे हैं कि आप विचार नहीं हो, विचार को केवल आप देख रहे हो, विचार अच्छा या बुरा से आपका कोई संबंध नहीं है। विचार कैसा भी हो, विचार विचार ही है। राम का विचार आया तो खुश, रावण का आया तो दुःखी, नहीं। यह बात ठीक नहीं है, दोनों ही विचार विचार हैं चाहे वह राम का हो, या रावण का। हम दोनों विचार के दृष्टा है, देखने वाले हैं। हम विचार नहीं है, यह बात हमें समझना है। हम क्या हैं यह जानने के बाद सारा खेल मालूम होगा। अभी जगत मालूम होता है वास्तविकता मालूम होती है। तब मालूम होगा कि सारी दुनिया हमसे चलती है, हम सारी दुनिया के मालिक

हैं।

अभी भले ही यह बात गप्प लग सकती है।

आइए एक उदाहरण से देखे, अच्छा यह बताओं कि पिता, पिता कैसे है?, कोई उसका पुत्र या पुत्री है, तो वह पिता है। इसी प्रकार कोई माता, माता तभी है जब उसके कोई सन्तान हो। यह तो सत्य मालूम होता है। अब अच्छा यह बताओं कि गुरु, गुरु कब है, जब उसका कोई शिष्य हो, तो शिष्य के कारण गुरु गुरु है। ठीक,। अब मान लो कि कोई शिष्य अपने आप को शिष्य न माने, किसी गुरु को गुरु न माने, तो उस शिष्य के लिए वह काहे का गुरु। तो सारा खेल मानने से ही तो हुआ। यदि मैं और अधिक स्पष्ट करूँ, तथा थोड़ा रफली कहूँ तो तुमने माना तो मैं गुरु हूँ, और यदि तुमने मुझे गुरु नहीं माना तो मैं काहेका तुम्हारा गुरु। अर्थात् तुम्हारे मानने से मैं तुम्हारा गुरु, न मानने से गुरु नहीं। इसी प्रकार जिस व्यक्ति को, घटना को, विचार को हमने अपना माना, उसके बनने-बिगड़ने से फर्क पड़ता है, अच्छा बुरा लगता है। तो सारी सृष्टि जिसे हमने अपना माना, उसके बनने-बिगड़ने से अच्छी-बुरी लगती है। तो सारी सृष्टि (दुनिया) अपने से है। इसलिए किसी भी विचार से राग (अटैचमेन्ट) या द्वेष न रखो। उसे केवल विचार जानो, केवल यह देखो कि यह विचार आया, रहा, चला गया। आदि-आदि।

स्वप्न अवस्था में स्वप्न आपको सत्य प्रतीत हो रहा था परन्तु जब आप जाग गए तो पता चला कि पहले जो देख रहे थे वह स्वप्न था, उसी प्रकार जब एक बार आप स्वरूप में जाग जाऐंगे तब आपको पता चलेगा कि ये जो सारा का सारा जगत दिखाई दे रहा है वह केवल मेरे स्वरूप या खेल के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

अभ्यास-

यह अनुभव करो कि जाग्रत अवस्था में आप हो। सपने में भी आप थे। गाढ़ी नींद को भी आपने जाना। विचारों को भी आप जानते हो।

हम तीनों अवस्था को जानने वाले हैं। अवस्था नहीं हैं, यह महसूस करें।

पूरा पाठ दो-तीन बार अनुभव करते हुए पढ़े, समझें।

श्री

अभी तक हमने यह जाना, समझा व अनुभव किया कि

- हमसे (हममें) ही सारे विचार उठते हैं, स्थित रहते हैं तथा लीन होते हैं अर्थात हम ही विचार की उत्पत्ति, स्थिति व संहार करते हैं।(पाठ १ में बताया है।)
- हम व विचार अलग है। विचार हम नहीं है, बल्कि हम विचार को अस्तित्व (सत्ता) प्रदान करते हैं तथा प्रकाशित करते (देखते) हैं। (पाठ २ में बताया है।)
- जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति तीनों अवस्था हैं, हम तीनों अवस्था को जानने वाले हैं। (पाठ ३ में बताया गया है।)

अब कहते हैं कि सुख, दुःख, राग (प्रेम, स्नेह) आदि भी अवस्था हैं, दृश्य हैं, हम इनके जानने वाले हैं-

अब उसी बात को पाठ ३ में और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि

अहं सुखी च दुःखी च रक्तश्चेत्यादिसंविदः।

सुखाद्यवस्थानुस्यूते वर्तन्तेऽन्यत्र ताः स्फुटम्।।४।।

सुख की अवस्था होने पर हम सुखी होने का अनुभव करते हैं, दुःख का दृश्य होने पर हम दुःखी होने का अनुभव करते हैं। जब हमें किसी से राग (स्नेह, प्रेम) होता है तो हम रागी हो जाते हैं। इन सबके अलावा होने पर, हमारा स्वभाव स्पष्ट रहता है।

पहले सिद्धान्त और समझ लें तब आगे बढ़े यहाँ यह कह रहे हैं कि जब पर्दे पर सुख का चित्र आया, पर्दे ने यदि अपने आप को चित्र माना या जाना तो सुख का चित्र आने पर वह (पर्दा) सुखी हुआ। दुःख का चित्र आने पर दुःखी हुआ। प्रेम का चित्र आने पर प्रेमी हुआ। इस प्रकार जिस-जिस चित्र से तादात्म किया, संबंध स्थापित किया तो वैसा अनुभव किया। वैसा होने

लगा। सुख का चित्र आने पर सुख से तादात्म स्थापित करने पर सुखी महसूस करने लगा। आदि।

आप भी जैसा विचार आता है वैसा अनुभव कर, अपने आप को वैसा मानने लगते हो, आप हो नहीं, पर मानने लगते हो।

जैसे उदाहरण के लिए माना कि कोई विश्व के सबसे समृद्ध देश में है, अमेरिका में है। मान लो कि वह स्त्री है, उसका पति भी बहुत पढ़ा-लिखा, विद्वान व समझदार है, नौकरी भी है, पैसा भी है, बंगला, कार, ए.सी. तथा सारी भौतिक सुविधाएँ भी हैं। बाहर उदास या दुःखी होने का कोई कारण भी न हो, परन्तु यदि उस स्त्री को मान लो कि कोई विचार ऐसा आ जाए (जैसे उसे इंडिया में घर की याद आ जाए, भाई या बहिन की याद आ जाए) जिससे वह दुःखी हो सकती है। तो यहाँ क्या समझा कि बाहर कोई भी निमित्त या कारण न होने पर भी केवल विचार आने से व्यक्ति दुःखी हो सकता है। इतना अनुभव करो फिर आगे बढ़ों।

दूसरा उदाहरण लें-कोई व्यक्ति है, किसी पाँच सितारा होटल में बैठकर चाँदी के बर्तन में बढ़िया पकवान खा रहा है, मानो कि रसगुल्ला खा रहा है, अब उसे कोई ऐसी बात याद आ जाए, जैसे कि किसी समय उसके पास पेट भरने लायक भी पैसे नहीं थे। या इसी रसगुल्ले को खाने के लिए उसने किसी से कितना कहा था, परन्तु नहीं खा पाया था। आदि-आदि। ऐसा दुःख का विचार आने पर वह दुःखी हो सकता है। आप कोई अन्य उदाहरण से भी समझ सकते हैं। इतना पढ़कर अनुभव कर आगे बढ़े।

अब दूसरी परिस्थिति को देखो, कोई है, उसके पास अभी कोई बहुत अच्छा रोजगार नहीं है, जॉब नहीं है। बहुत दिनों से वह प्रयास कर रहा है, एक दिन उसे मलेशिया से जॉब का ऑफर आता है, उसका सिलेक्शन होने वाला है या हो गया है, अभी पैसा नहीं आया, अभी मलेशिया भी नहीं गया। पैसा भी नहीं कमाए या बचे, परन्तु उसके अन्दर अब ऐसा भाव है कि वह हर क्षण प्रसन्नता का अनुभव करता है, बहुत खुश है। सबसे कहता है कि मेरी इतने लाख रुपए की तनख्वाह होने वाली है, वह मकान या कार आदि खरीदेगा आदि-आदि।

दोनों स्थिति का गहराई से अध्ययन करने पर हम यह पाते हैं कि बाहर की परिस्थिति कुछ भी हो, परन्तु व्यक्ति का मन या चित्त जिस विचार को पकड़ता है वैसा वह अनुभव करता है।

सुख का विचार पकड़ने पर सुखी, दुःख का विचार पकड़ने पर दुःखी, प्रेम का विचार पकड़ने पर प्रेमी, द्वेष का विचार पकड़ने पर द्वेषी होने लगता है।

तो हमने क्या समझा ? या जाना? बाहर कोई भी निमित्त न होने पर भी व्यक्ति सुखी व दुःखी होने लगता है।

जिस स्थिति में वह अपने आप को विचार से अलग महसूस करता है वह उसका वास्तविक स्वरूप होता है।

एक बात ध्यान देने कि हैं कि विचार चाहे सुख का हो या दुःख का वह विचार ही है। अवस्था ही है, अस्तित्व नहीं है।

यदि ऐसा समझ में न आए तो हमें कहना पड़ेगा कि काँटा काँटा है, चाहे वह चाँदी हो, सोने का हो या लकड़ी का, चुभने पर दर्द देगा ही। सुख के विचार को अच्छा या अपना मानना भी गलत है, दृश्य को पर्दा मानना ही गलती है, दृश्य दृश्य ही है।

सुख, दुःख, राग, द्वेष, कामना, ब्राह्मण आदि वर्ण, पिता आदि, पुत्र आदि, पति आदि, मन्त्री आदि, सभा में मंच पर या नीचे, टीचर या छात्र, धनी या गरीब, कार या साईकिल, ज्ञानी और अज्ञानी, ये सारी अवस्था या वृत्ति ये चल रही है,

जो भी ज्ञात हो रही है वह पृथक हो रही है कि नहीं।

अन्यत्र का अर्थ क्षोभ प्रलीनेत ले सकते हैं क्या??????????? तो जब वह इनसे अलग है तो स्पष्ट है।

वृत्ति से आप पृथक है तभी तो जो सुखी होता है वही दुःखी होता है।

जैसे लोहा अग्नि से पृथक है, तभी तो गर्म व ठण्डा होता है, परन्तु अग्नि का स्वभाव तो गर्म है वह ठण्डी नहीं हो सकती है।

आप अस्तित्व है, अवस्था नहीं है।

परिस्थिति के कारण निमित्त के कारण आप सुखी-दुःखी होते हैं। अन्यथा आप स्वभाव में रहते हैं।

अभ्यास-

अब सुख के विचार को पैदा करें, कोई सुखद स्मृति को याद करें थोड़ी देर दो-तीन या पाँच मिनिट, फिर महसूस करें कि आप को कैसा लग रहा है। अब यह भी जाने कि यह एक अवस्था है विचार के संबंध के कारण आप को सुख का अनुभव हो रहा है। अब उस सुख की अवस्था को देखे। कौन सुखी हो रहा है, सुख भी दृश्य के समान है।

अब कोई दुःख की स्मृति या घटना थोड़ी देर के लिए १ मिनिट याद करें। अब देखें कि यह दुःख हो रहा है वह भी दृश्य ही है।

अवस्था चाहे सुख की हो, या दुःख की वह अवस्था है, वह चित्र है, पर्दा नहीं है।

चलो आज एक घटना या कहानी सुनाते हैं। वैसे यह वास्तविक घटना है। एक महाराज थे, बहुत पहुँचे हुए सन्त थे, वे सन्त ब्रह्मज्ञानी थे। एक समय किसी रोग के कारण उनको पेट में बहुत पीड़ा होती थी। एक दिन उन्हें जब बहुत पीड़ा हो रही थी, उस समय कोई दूसरे महाराज उनके पास आए हुए थे, उन्होंने ने पूछा कि आपको जब यह पीड़ा उठ रही है तो कैसा लग रहा है, आपकी क्या अनुभूति है। अब सन्त लोग तो बड़े विनोदी होते हैं। उन्होंने ने कहा कि मैं तुमको एक कहानी सुनाता हूँ। एक बार किसी बुढ़िया के खेत में एक ऊँट घुस आया अब बुढ़िया जोर-जोर से थाली बजाने लगी, तो ऊँट ने कहा कि हे बुढ़िया तू व्यर्थ प्रयास मत कर, मेरी पीठ पर युद्ध के बड़े-बड़े नगाड़े बजे हैं, (वह ऊँट युद्ध के कार्य में लाया जाता था, उसकी पीठ पर नगाड़े रखकर बजाए जाते थे।) मुझे तेरी ये थाली की आवाज का कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है।

तो हे महराज (महाराज), ये जो पीड़ा है वह है तो दृश्य ही ना। मैंने अनन्त सृष्टि, पालन, संहार देखा या किया है, यह पीड़ा भी दृश्य ही है।

हमें ऐसा लग सकता है कि वे तो महान सन्त थे, बहुत पहुँचे हुए सन्त थे, हम साधारण हैं, गृहस्थ हैं, कैसे उस अवस्था को प्राप्त कर सकते है तो आपका सोचना ठीक नहीं है।

आप भी उस अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं, इसीलिए तो यह उदाहरण दिया है, जितनी भी अवस्था हैं चाहे वह सुख की हो या दुःख की, अवस्था ही है। जब इस बात का आपको अनुभव हो जाएगा, तो वह कला भी आ जाएगी सारा का सारा केवल दृश्य ही है।

आगे हम बताने वाले हैं कि इन सारे पाठों का आप यदि ईमानदारी व मेहनत से अध्ययन व अनुभव करते हैं तो हम आपको चक्रवर्ती बनाएँगे ये हमारा वायदा है। (वास्तव में हम क्या चक्रवर्ती बनाएगें, आप तो हो ही हम तो बस पहचान कराएँगे।)

तो इस कारिका में हम ने क्या जाना, हम ने यह जाना कि सुख-दुःख, राग आदि जो अवस्था हैं, उसके अतिरिक्त जो अवस्था है, वह अपनी वास्तविक अवस्था है। अर्थात् जिस अवस्था में हममें कोई उपाधि न हो, हम रागी, द्वैषी, सुखी-दुःखी, लोभी, कामी आदि न हो या ऐसा भाव न हो, वह अवस्था अपनी वास्तविक अवस्था है।

श्री

न दुःखं न सुखं यत्र न ग्राह्यो ग्राहको न च।
न चास्ति मूढभावोऽपि तदस्ति परमार्थतः।।५।।

आप न दुःखी हैं, न सुखी हैं, न ही ग्रहण करने वाले हैं, न ही मूढ ही हैं वरन् जिस में यह सब स्थित होते हैं, वह आप हो। जैसे पर्दे पर दुःख का चित्र आया, तो पर्दा कोई दुःखी नहीं हुआ, या पर्दे पर सुख का दृश्य आया तो पर्दा सुखी नहीं हुआ आप केवल सत्ता दे रहे हैं। परन्तु पर्दे के समान आप जड़ नहीं है (मूढ नहीं है) क्योंकि आप प्रकाशक हैं, प्रकाशित भी आप कर रहे हो। वास्तव में आपका यही स्वभाव है, क्या है ? सत्ता देना तथा प्रकाश देना।

हम पहले देख चुके हैं कि एक पर्दा है तथा दूसरा पर्दे पर दिखने वाला दृश्य है। आप पर्दा हैं, दृश्य नहीं हैं। पर्दा अर्थात् मन। दृश्य अर्थात् मन पर उठने वाला विचार। तो आप विचार नहीं है। ये सब अवस्था हैं, आने-जाने वाली है, क्षणभंगुर हैं, स्थाई नहीं हैं, नित्य नहीं हैं, अनित्य हैं। आपका स्वरूप नित्य है, हमेशा रहने वाला है। इसी प्रकार सुख-दुःख आने-जाने वाली वृत्ति हैं। आप विचार नहीं हो। तो इतना स्पष्ट हो गया है न सुखं न दुःखं यत्र।

अब देखें कि न ग्राह्यो-ग्राह्यको न च। अर्थात् न तो आप ग्रहण करने वाले हो, न ही ग्राह्य हो। जैसे न तो आप दृष्टा हो, न ही आप दृश्य हो। न आप भोग्य हो, न भोक्ता हो। देखो, इसको समझने के लिए एक सरल उदाहरण लें, आप शान्त

बैठे हैं कोई विचार नहीं है, अब एक विचार उठा हो तो, आपके अन्दर ही दो भाव हो गए, एक दृश्य हो गया तथा एक उस दृश्य को देखने वाला हो गया। एक दृश्य हो गया, एक दृष्टा हो गया। तो इससे पहले की जो स्थिति थी, जिसमें कोई दृश्य नहीं था उस समय दृष्टा भी नहीं था। (आप अभी भले ही कहें कि हम खालीपन देखते हैं परन्तु यह कुछ श्लोकों के बाद स्पष्ट हो जाएगा, कि स्वरूप में ही दृष्टा व दृश्य दोनों कल्पित हैं।) अभी तो स्वरूप का लक्षण बता रहें हैं कि आपका वास्तविक स्वरूप क्या है? फिर उस स्वरूप की पहचान कराएँगे, उसके पश्चात आप उसमें स्थित होंगे।

जैसे उदाहरण के रूप में देखे तो जाने कि एक दर्पण है, उसमें विभिन्न दृश्य आते हैं परन्तु दर्पण का किसी भी दृश्य के साथ कभी भी कोई संबंध नहीं बना। कोई भी दृश्य, कभी भी दर्पण में नहीं घुसा या चिपका या प्रवेश किया। तो इसी प्रकार आपके स्वरूप से किसी भी भाव का कोई भी संबंध कभी भी नहीं बना। यहाँ सावधानी समझने में क्या रखना है कि दर्पण है जड़, आप हो चेतन। तो दर्पण दृश्य को जानता है, इसलिए दर्पण को कैसे भी दृश्य आ जाए कोई समस्या नहीं है, परन्तु आप चैतन्य हो अतः दृश्य अर्थात् विचार को जानते हो, विचार के साथ आपका परामर्श हो जाता है, बस यही गड़बड़ है। आपको जानना क्या है मैं विचारों को प्रकाशित करता हूँ, मैं विचार नहीं हूँ। कोई भी विचार मेरे वास्तविक स्वरूप को स्पर्श भी नहीं कर सकता है। अस्तु

तो अभी तक यह कहा कि आप सुख-दुःख व ग्राह्य-ग्राह्यक नहीं हैं। अब कहते हैं कि न चास्ति मूढभावोऽपि, आप मूढ भाव भी नहीं हो। आप खम्बे के समान जड़ भी नहीं हो, आप चैतन्य स्वरूप हो, जड़ नहीं हो।

आप चैतन्य स्वरूप हो तभी आप विचारों को प्रकाशित करते हो। चैतन्य नहीं होते तो जैसे दर्पण दृश्य को नहीं जानता, वैसे ही आपके सामने दृश्य उपस्थित होने पर भी आपका परामर्श नहीं होता। अब परामर्श तो होता है अतः आप जड़ नहीं हो।

तो कहा कि सुषुप्ति में भी सुख-दुःख, ग्राह्य-ग्राहक भाव नहीं होता, परन्तु मूढ भाव रहता है। तो कहा कि वह मूढ़ भाव भी नहीं है। केवल प्रकाश स्वरूप है। परमार्थतः केवल एक ही सत्ता है, उसमें ही सारा का सारा दिखाई दे रहा है। परमार्थतः नित्य होता है, बाकि तो परिवर्तनशील है। सुख आदि संकल्प से उत्पन्न हैं, इसलिए क्षणभंगुर है, आत्मस्वरूप से बाहर हैं। खम्बे के समान भी नहीं है। तद्अस्ति वह है।

अब एक शब्द आया है श्लोक में कि परमार्थतः, इस शब्द को भी थोड़ा समझ लें, देख लें। परमार्थतः अर्थात् वास्तविक, जो आभास है, वह नहीं। जो दिख रहा है वह नहीं, वास्तविक।

जो एक उदाहरण से देखने का प्रयास करें। जैसे मान लो कि एक कपड़ा है जैसे कुर्ता। कुर्ता सत्य है या कपड़ा, तो आप कहोगे कि कपड़ा। कपड़े की विशेष प्रकार की बुनावट ही कुर्ता, वास्तव में तो वह कपड़ा ही है, या कपड़ा सत्य है। अब हम कहेंगे कि कुर्ते की तुलना में कपड़ा सत्य है। या कुर्ते का वास्तविक स्वरूप कपड़ा है, कपड़े के बिना कुर्ता नहीं रह सकता या हो सकता, परन्तु कुर्ते के बिना कपड़ा हो सकता है। बड़ा सरल है यहाँ तक। स्पष्ट है। तो आगे चलें।

अब कहेंगे कि कपड़ा सत्य है या धागा। तो आप कहोगे कि धागा। धागे की ही एक विशेष प्रकार की बुनावट कपड़ा है। ठीक है। तो तुलनात्मक रूप से धागा सत्य हुआ तथा कपड़ा एक उपमा हुई। इतना स्पष्ट है। भई सत्य की खोज हो रही है। तो आखिरी सत्य तक जाना है।

तो आगे चले तो जो विज्ञान के विद्यार्थी हैं वे जानते हैं कि धागा एलीमेन्ट्स से बना है। तो एलीमेन्ट्स भले ही हमारी आँखों से दिखाई नहीं दे रहें है, परन्तु धागे का एक केमीकल कम्पोजिसन है, जिसमें वह विभिन्न तत्वों से बना है। तो धागे की तुलना में एलीमेन्ट्स सत्य हुआ।

अब खोज आगे बढ़ी और अधिक सूक्ष्म में गए तो पता चला कि ये एलीमेन्ट्स भी इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान के बने हैं।

और आगे खोज किया तो फिजिक्स, केमीस्ट्री के विद्यार्थी जानते हैं कि इलेक्ट्रान, प्रोट्रान, न्यूट्रान, पार्टीकल व वेवज् से बने है तथा पार्टीकल व वेवज् (कण व तरंग) ऊर्जा के रूप है। ऊर्जा की अभिव्यक्ति है। यह ऊर्जा ही परम सत्य है। यदि इतना स्पष्ट है तो हमारा काम बिल्कुल आसान है। कि कुर्ते का वास्तविक रूप क्या है-ऊर्जा। यह अन्तिम सत्य पाया।

इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ को हम विश्लेषण करेंगे तथा उसका वास्तविक स्वरूप जानना चाहेंगे तो वह ऊर्जा ही मिलेगा। वही ऊर्जा अलग-अलग पदार्थ में अभिव्यक्त या व्यक्त या प्रकट हो रही है। ठीक है। यह यह हुआ पारमार्थिक स्वरूप। इसी प्रकार

हमारा पारमार्थिक स्वरूप क्या है, जिसमें कोई सुख-दुःख, ग्राह्य-ग्राहक भाव नहीं है, वह मूढ अर्थात जड़ भी नहीं है। यह हमारा वास्तविक स्वरूप है। वह दिख नहीं रहा है। पर्दा दिख नहीं रहा है। दिख चित्र रहा है। हमें जानना है पर्दा। दिख सुख-दुःख रहा है, हमें जानना है स्वरूप। उस स्वरूप में सुख-दुःख, आदि वृत्तियाँ, समुद्र में उठने वाली लहर के समान हैं, तरंग के समान हैं।

तो इस कारिका में हमने ये जाना कि अपना वास्तविक स्वरूप सुख-दुःख, ग्राह्य-ग्राहक भाव नहीं है। तथा वह मूढ (जड़) भी नहीं है। वह चैतन्य है। अस्तु

यतः करणवर्गोऽयं विमूढोऽमूढवत् स्वयम्।

सहान्तरेण चक्रेण प्रवृत्तिस्थितिसंहृतीः।।६।।

लभते, तत्प्रयत्नेन परीक्ष्यं तत्त्वमादरात्।

यतः स्वतन्त्रता तस्य सर्वत्रेयमकृत्रिमा।।७।।

अन्तकरण सहित (बुद्धि से लेकर शरीर तक) सब करण वर्ग, विमूढ (जड़) है, इसलिए इसकी अपनी कोई सामर्थ्य नहीं है, परन्तु यह करणवर्ग व्यवहार कर रहा अमूढ के समान, चेतन के समान। चेतना के समान उत्पत्ति, स्थिति व संहार करता हुआ सा अनुभव हो रहा है। जड़, स्वतन्त्र के समान व्यवहार कर रहा है। साधक को प्रयत्न पूर्वक आदर सहित उस तत्व की परीक्षा करना चाहिए कि यह कार्यकरण संघात (जड़) ढॉचा किससे चल रहा है? उसको पहले आदरपूर्वक स्वीकर करो, फिर उसकी परीक्षा करो। उसकी परीक्षा क्यों करना? क्योंकि उस अवस्था में एक अकृत्रिम स्वातन्त्र है।

आइए अब इस कारिका को, श्लोक को समझने का प्रयास करें। पहले करणवर्ग को समझें। करण अर्थात् उपकरण, उपकरण का अर्थ हुआ इन्स्ट्रूमेन्ट। जिसकी सहायता से कार्य करते हैं। जैसे हम लेखनी या पेन या कलम से लिखते हैं। तो पेन या कलम हुआ उपकरण। अब यह उपकरण (पेन) अपने आप नहीं लिखता, हम उसे हाथ में लेकर या पकड़ कर जो लिखवाना या लिखना चाहें वह लिखता है। तो पेन हुआ उपकरण।

वैसे ही चाकू हुआ उपकरण। जो चीज हम काटना चाहे तो चाकू से काटते हैं। चाकू अपने आप से कुछ नहीं काटता, हमसे बल लेकर चाकू काट पाता है। ठीक।

और भी उदाहरण देखना चाहे तो बल्ब, फ्रीज, कूलर, हीटर हैं उपकरण। बल्ब अपने आप प्रकाश नहीं करता, विद्युत का संयोग होने पर प्रकाश करता है। फ्रीज अपने आप से ठण्डा नहीं रखता बल्कि विद्युत संयोग से पदार्थ को ठण्डा रखने में समर्थ है। कूलर भी विद्युत संयोग से वातावरण को ठण्डा रखने में समर्थ है। हीटर विद्युत संयोग से वातावरण को गर्म करने में समर्थ है। ये सब हैं उपकरण। ये उपकरण अपने आप से कुछ भी करने में समर्थ नहीं हैं, इनको बल विद्युत से मिल रहा है तो जैसे ढाँचा है बल्व, फ्रीज आदि, वैसा कार्य करने में समर्थ हैं।

तो हमने ये जाना कि उपकरण हैं जड़ तथा ये उपकरण अपने आप में कार्य करने में समर्थ नहीं होते हैं वरन् कहीं ओर से (विद्युत से) बल लेकर अपना-अपना कार्य करते हैं।

तो शरीर से लेकर बुद्धि तक ये है जड़। ये अपने आप कार्य नहीं करते। इसको समझने के लिए हमें पहले यह देखना होगा कि शरीर किस प्रकार कार्य करता है। चलो एक उदाहरण से देखते हैं। अब हमें कोई कार्य करना है जैसे सामने गिलास में पानी भरा हुआ है और हमें पीना है। जो मन ने संकल्प किया कि पानी पीना है तो शरीर को आदेश दिया, हाथ ने गिलास उठाया, मुँह में पानी भरा तथा मुँह ने पानी पिया।

दूसरा उदाहरण देखें मन में इच्छा हुई कि मिठाई खाना है, मिठाई घर में उपलब्ध नहीं है तो शरीर को आदेश दिया, चलो उठो, मिठाई की दुकान पर चलो, शरीर उठा, मिठाई की दुकान पर गया, मिठाई खरीद, घर लाकर या वहीं मिठाई खाई। तो देखो शरीर, किसके आदेश से चल रहा है, तो पहली सीढ़ी में पता चला कि मन के आदेश से शरीर चलता है। इतना स्पष्ट है कि कुछ शंका है। शंका हो तो पूछ लो।

अभी तक हम एक सीढ़ी चले। अब दूसरी पर देखें कि वास्तव में मन के कहने पर यह चलने लगा या कुछ और भी गणित या केलक्युलेशन है। और गहराई से जब हम इसका अध्ययन करते हैं तो कुछ विशेषता मालूम होती है। जैसे माना कि किसी

व्यक्ति को मधुमेह का रोग है, डॉक्टर ने उसे मिठाई खाने को मना किया है। तो क्या स्थिति बनती है। कि उसके मन में इच्छा हुई कि मिठाई खाने चाहिए परन्तु बुद्धि ने कहा कि नहीं, मिठाई खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है तो मन की इच्छा से बुद्धि ने असहमति जताई, मन ने फिर शरीर को आदेश नहीं दिया। तो मन किससे चलता है बुद्धि। अन्य उदाहरण से देखने का प्रयास करें- जैसे कोई बालक है, बच्चा है, परीक्षा का समय है। अन्य कोई साथी हैं किसी दूसरे स्कूल में पढ़ते हैं, उनकी परीक्षा समाप्त हो गई, वे बालक इसे खेलने को बुलाते हैं, इस बालक का मन भी करता है कि खेलने जाएँ। परन्तु बुद्धि कहते हैं कि नहीं, परीक्षा के बाद खेलेंगे। तो बालक खेलते नहीं जाता है। तो क्या जाना कि मन, बुद्धि के आदेश का पालन करता है। इतना स्पष्ट है तो आगे देखें।

अब यह भी देखो कि यह जो बुद्धि है उसके साथ किसका बल लगता है, किसकी ताकत लगती है। जब आप बुद्धि के निर्णय को सहमति देते हैं, आप अपनी सहमति देते हैं तो वह निर्णय लागू होता है। तो बुद्धि में आपका बल लगता है तो वह निर्णय लागू होता है। जैसे मधुमेह के उदाहरण में आप सहमति देते है कि मिठाई नहीं खाना तो वह निर्णय लागू होता है, आपकी सहमति आवश्यक है।

बल्ब आदि के उदाहरण में उपकरणों को प्रकाश या ताकत, विद्युत से मिल रही है। बल्ब आदि है जड़। ठीक इसी प्रकार शरीर, मन, बुद्धि ये हैं जड़। इनको ताकत मिल रही है स्वरूप से। प्रत्येक लहर को बल मिल रहा है समुद्र से। तो अभी तक हम ने क्या समझा कि जो जड़ है वह चेतन के संयोग से चेतन के समान व्यवहार कर रहा है।

शरीर आदि जो हैं वह वास्तव में जड़ है, परन्तु चेतन का संयोग होने से यह शरीर चेतन के समान व्यवहार कर रहा है। अब कहते हैं कि उस तत्व की आदर के साथ, श्रद्धा के साथ परीक्षा करों कि किससे बल से यह जड़ चेतन के समान व्यवहार कर रहा है।

क्यों परीक्षा करो, इसलिए करो कि उस तत्व में सभी तरफ अकृत्रिम सामर्थ्य व स्वातन्त्र है। जैसे उदाहरण के द्वारा देखने का प्रयास करें तो कहेंगे कि देखो बल्ब, फ्रीज, पंखे, कूलर, हीटर जो जड़ है, यह विद्युत से चलते हैं। अब यदि विद्युत को जान जाओगे तो विद्युत में असीम सामर्थ्य व स्वातन्त्र है। विद्युत में ५ वॉट के बल्ब के १००० या लाख पॉवर के बल्व को भी जलाने का सामर्थ्य है। विद्युत में ठण्डा, गर्म आदि करने का सामर्थ्य है, जैसे यन्त्र या ढॉचा लगाओ कि वैसी सामर्थ्य प्रकट हो जाएगी। मूल विद्युत में असीम सामर्थ्य अप्रगट रूप में है। बल्ब आदि के माध्यम से वह प्रगट होती है।

शरीर आदि (मन, बुद्धि) में जो सामर्थ्य दिखता है वह चैतन्य का ही सामर्थ्य है। जब हम स्पन्द में या चैतन्य में पहुँचेगे तो वह स्पन्द का सामर्थ्य हममें प्रगट हो जाएगा। उस स्पन्द में असीम सामर्थ्य है तथा स्वतन्त्रता है।

अब आप कह सकते हो कि यदि वो असीम सामर्थ्य है तो प्रगट क्यों नहीं है, ऐसा अनुभव क्यों नहीं होता है। इसका कारण है कि अभ्यास छुटा हुआ है। संकुचित हो गया है। वास्तव में संकुचित हुआ नहीं है परन्तु मान लिया है कि संकुचित हो गया हूँ। आइए इसे समझने का प्रयास करें।

उदाहरण वही रहने दें, बल्ब का, विद्युत का, तो देखो विद्युत में असीम सामर्थ्य है परन्तु जब हम बल्ब में देखते हैं तो जितना बल्ब का सामर्थ्य है उतना प्रगट है। यदि बल्ब का सामर्थ्य पाँच वॉट है तो पाँच वॉट की विद्युत प्रगट है। ठीक, एक और उदाहरण से देखे। आकाश से व्यापक, परन्तु घटाकाश (घड़े में स्थित आकाश) कितना है जितना बड़ा घड़े का आकार है, उतना बड़ा घटाकाश है। तो देखो आकाश है व्यापक परन्तु जब उसने एक घड़े में सीमित हो गया तो घटाकाश हो गया, अब जितनी घड़े की सामर्थ्य है बस उतना सामान ही आ सकता है। तो आकाश ने अपने को सीमित मान लिया तो संकुचित हो गया।

आपने भी अपना स्वरूप जो की सर्वज्ञ है, सर्व कर्तृत्व की जिसमें सामर्थ्य है उसको इस एक शरीर में संकुचित मान लिया। बस मान लिया तो वह संकुचित हो गया। अब उसे केवल इस शरीर का ज्ञान होता है, अन्य शरीर का ज्ञान नहीं होता। इस शरीर में, देह में कहीं कोई खुजली चली तो पता चला, दूसरे के शरीर में क्या हुआ तो पता नहीं चला, बस यही संकोच है।

और समझने का प्रयास करें, जैसे शब्द है व्यापक। आज के समय में कहीं पर कोई क्रिकेट का मैच चल रहा है, मान लो कि इग्लेण्ड में चल रहा है, उसी मैच को उसी समय हम यन्त्र के माध्यम से भारत में देख रहे हैं। उसी मैच को यन्त्र के माध्यम से आप विश्व में कहीं भी देख सकते हो। शब्द आप मोबाईल फोन के माध्यम से ग्रहण कर रहे हो। ठीक है। तो देखे रूप, शब्द आदि सब व्यापक हैं। इनको आप यन्त्र के माध्यम से ग्रहण कर रहे हो। वैसे ही जब आप मूल में, स्रोत में स्थित हो

जाओगे तो जिधर ध्यान करोगे, जो रूप देखना चाहोगे, जो शब्द सुनना चाहोगे सुन पाओगे। अभी केवल अभ्यास छूटा हुआ है।

लहर जो कि वास्तव में समुद्र रूप है। जब लहर अपने आप को समुद्र रूप अनुभव करेगी, तब समुद्र में उठने वाली हर लहर को जानेगी। बल्ब में रहने वाली विद्युत, जब अपने आप को विद्युत रूप जानेगी तो विद्युत की प्रत्येक अभिव्यक्ति में अपने को पाएगी, महसूस करेगी।

वैसे ही जब आप स्वरूप में स्थित होगे तो आप अपने स्वातन्त्र में स्थित होगे, तब आपका अकृत्रिम स्वातन्त्र प्रगट होगा तथा आपमें असीम सामर्थ्य होगा। अस्तु

न हीच्छानोदनस्यायं प्रेरकत्वेन वर्तते।

अपि त्वात्मबलस्पर्शात् पुरुषस्तत्समो भवेत्।।८।।

ये इच्छा रूपी उत्प्रेरण (बैल को चाबुक) इसी से यह प्रेरणा का हेतु नहीं है, इसमें बल किसका है? वह तो करण है, उसमें कहाँ बल है? आप उसके साथ बल लगा रहें हैं, अपना बल लगा रहे हैं, तभी उसकी प्रवृति हो रही है। व्यक्ति सावधान नहीं हैं इसलिए समझ नहीं पा रहें हैं। इसलिए कहा है कि उसकी परीक्षा करके देखो। आत्मबल के स्पर्श हो रहा है। विद्युत के स्पर्श से बल्ब जल रहा है। वहाँ आप जाकर देखों कि आप स्वतन्त्र हो कि नहीं। आप शिव हो जाआगे। वहाँ शिव व आपमें कोई भेद नहीं है। शून्य पॉवर जब विद्युत में बैठकर देखेगा तब १ लाख पॉवर स्वयं में भेद नहीं।

यह जो शरीर चल रहा है वह आपके बल से चल रहा है आपका बल न हो तो यह चल नहीं सकता।

(आपने अपने आप को माना क्या? बस सारा कुछ इस पर निर्भर है यदि व्यापक माना तो व्यापक हो गए, घटाकाश माना कि आकाश माना?)

उदाहरणः-अभी तक आपने जो भी कार्य किया वो क्या केबल इच्छा करने से हो गया।

मिठाई खाना, शुभ या अशुभ कहना, गाली बकना, अत्याचार सहना, अत्याचार करना, पिक्चर देखना, पढ़ना, सोना आदि । छोटे-बड़े सभी कार्य।

स्पन्दकारिका

न हीच्छानोदनस्यायं प्रेरकत्वेन वर्ततो।

अपि त्वात्मबलरचर्शात् पुरुषस्तत्समो भवेत्।।८।।

८-श्लोक—यह जो सारा शरीर जो कि जड़ है, क्या यह इच्छा रुपि चाबुक के मार से चल रहा हैं? क्या हमारी इन्द्रियाँ मन में इच्छा होने पर, मन के निर्देश के अनुसार अपने-अपने कार्यो में लगी रहती हैं?

इस सम्बन्ध में यह कारिका कहती हैं कि यह केवल इच्छा के बल से नहीं हो रहा हैं, वरन् जब आप उसमें अपना बल (सहमती) लगाते हैं तब वह जड़ वर्ग (शरीर, इन्द्रियाँ) अपने-अपने कार्यों में लगती हैं। उस आत्मबल को जानकर आप स्वयं वह हो जाते हैं।

उदाहरण के लिये- जैसे एक पाँच वॉल्ट के बल्ब के अन्दर जब वह प्रकाश (जो पाँच वॉल्ट के बल्ब के अन्दर हैं।) यह देखें की मुझमें जो प्रकाश हैं मूल विद्युत का ही हैं, तो उसमें असीम सामर्थ्य आ जाता हैं।

जैसे अन्य उदाहरण में हम देखना चाहे तो एक घटाकाश हैं (घड़े के अन्दर स्थित आकाश) जब तक वह अपने आपको सीमित मानता हैं, तब तक उसकी सार्मथ्य चना रखने की सीमित हैं, जब वह घड़ा फूट गया तो उसमें असीम सामर्थ्य हैं। जो सीमित सामर्थ्य हैं वह उपाधि (घड़ा) के कारण हैं। जो आकाश सभी दूर व्यापक हैं वह घट उपाधि के कारण सीमित हो गया वरना आकाश असीमित हैं।

हम यह देख चुके हैं, कि शरीर आदि हैं, जड़ तथा व्यवहार कर रहा हैं चेतन के समान। जैसे लोहे में जलाने की ताकत नहीं हैं, परन्तु यदि लोहा अग्नि के संपर्क में रहे तो उतने समय उसमें जलाने की शक्ति रहती हैं। (जलाना, लोहे का धर्म न होते हुए भी, अग्नि के संयोग से लोहा जलाने में समर्थ हो रहा हैं।) ठीक इसी प्रकार शरीर हैं जड़, परन्तु चेतन के संयोग के कारण यह (शरीर) चेतन के समान व्यवहार कर रहा हैं, हँस रहा हैं, चल रहा हैं, बोल रहा हैं आदि-आदि।

अब यहाँ इस कारिका में यह बता रहे हैं कि देखो यह शरीर (ढाँचा) केवल इच्छा रूपी चाबुक की प्रेरणा से नहीं चल रहा हैं, बल्कि आपके (चेतन के) बल के स्पर्श से शक्ति पाकर यह कार्य कर रहा हैं।

इसे एक उदाहरण से देखने का प्रयास करते हैं - आपकी इच्छा हुई या यूँ कहें कि मन में संकल्प आया कि मिठाई खाना चाहिए। तो आप (शरीर) बाज़ार चल दिए। मोटे तौर पर देखने से यह लगता है कि मन ने इच्छा की, तो शरीर कार्य करने लगा। परन्तु जब आप थोड़ा सूक्ष्म रूप से देखते हैं तो पाते हैं कि बुद्धि तथा आपकी सहमति होने पर ही यह (शरीर) अपने कार्य में लगा।

आइए इस बात का थोड़ा विश्लेषण करें। मान लो मन ने इच्छा की (मिठाई खाने की), बुद्ध ने कहा नहीं, अभी पिछले हफ्ते (सप्ताह) ही मिठाई खाई थी, या अभी स्वास्थ ठीक नहीं है, अगले सप्ताह त्यौहार या जन्मदिन आ रहा हैं, तब खाएँगे। तो देखो इस परिस्थिति में मन की इच्छा तथा बुद्धि के विचार में या अन्तर या फर्क आ गया। अब इच्छा हो रही है, खाने की तथा विचार कह रहा है बाद में मिलेगा। अब आप विचार करो कि दोनों में से किसकी बात मानी जाएगी। थोड़ा सोचो।

अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि जिसकी ओर आपकी सहमति होगी, आपकी बात मानी जाएगी। आपकी सहमति, मन या इच्छा की ओर हुई कि अभी भी खाँएगे बाद में त्यौहार या जन्मदिन पर पुनः खाएँगे। तो मन की बात मानी गई।

ठीक इसी प्रकार यदि आपने बुद्धि या विचार का समर्थन किया, कि ठीक ही तो हैं, अभी स्वास्थ ठीक नहीं हैं, थोड़े दिन बाद खा लेंगे। तो बुद्धि की बात मानी गई।

तो आप ने यह जाना कि आप अपना बल जिस ओर लगाते हैं वह कार्य होता हैं।

अर्थात् सारा कार्य आपकी सहमति या आपके बल का स्पर्श पाकर हो रहा हैं।

कभी आप सूक्ष्म रूप से देखें तो पाएंगे कि आप कोई विचार कर रहें हैं और वह विचार ठीक नहीं हैं या उचित नहीं हैं तो उस विचार को बन्द कर, दूसरा विचार आरंभ कर देते हैं अर्थात् विचार भी आपका बल पाकर उठता हैं। अस्तु

इस कारिका (श्लोक) के माध्यम से आपका ध्यान, आपकी सामर्थ्य की ओर दिला रहे हैं कि देखो, यह मन, बुद्धि, शरीर, इन्द्रियाँ आदि सब आपकी सामर्थ्य से चल रही हैं। आपसे बल पाकर, आपके बल का स्पर्श पाकर अपने-अपने कार्यों में लगी

हुई हैं। आप थोड़ा अपने उस बल की ओर ध्यान दो।

अब हम इतना तो समझ चुके हैं या जान चुके हैं कि आपके अपने अर्थात् चेतन के बल से यह ढाँचा (शरीर) आदि चल रहा हैं।

अब देखो आगे कहते हैं कि आप अपनी सामर्थ्य को पहचानो, अपने बल की ओर जरा देखो, तब आप अपने आप को जान पाओगे तो आप चेतन स्वरूप हो जाओगे जो कि आप ही हैं।

जब आप अपनी सामर्थ्य को जान लोगे, अनुभव कर लोगे, तब आपको पता चलेगा कि अरे मन तो मेरा नौकर है और इतने दिनों (सालों से, वर्षों से) मालिक बनकर बैठा था, और मुझे नचाता रहा हैं, कैसे-कैसे कार्य, इस मन ने मुझसे करवाए आदि-आदि। और अब यह मन मेरी बात मानेगा, मेरी आज्ञा का पालन करेगा क्योंकि अपनी सामर्थ्य का मुझे पता चल चुका हैं। वास्तविक स्वरूप का बोध हो चुका हैं।

जब आप अपनी चेतन शक्ति का अनुभव कर लोगे तब आपको अपनी सामर्थ्य का पता चलेगा तथा उसके समान आप हो जाओगे।

अभ्यास– अपने बल के आधार पर देखों कि यह शरीर, मन, बुद्धि किसके बल से चलते हैं।

श्लोक ८ का अभ्यास

यह देखने का प्रयास कि यह शरीर, किसके बल या कहने या निर्देश पर चलता हैं?

जब उपरोक्त प्रश्न का उत्तर आ जाए–मन, तब यह देखने का, जानने का प्रयत्न करें कि मन जो चाहता हैं, उस पर कौन निगरानी रखता हैं, सही, गलत का निर्णय कौन करता हैं, मन पर अंकुश कौन लगाता हैं, मन किसके निर्देश का पालन करता हैं?

जब उपरोक्त प्रशनों का उत्तर बुद्धि में आ जाए तब यह जानने का उपक्रम करो कि बुद्धि में किसका बल हैं, किसकी सहमति हैं।

निजाशुद्ध्यासमर्थस्य कर्तव्येष्वभिलाषिणः।

यदा क्षोभः प्रलीयेत तदा स्यात्परमं पदम्।।९।।

चाहे वेदान्त आदि में देखों। अशुद्धि। जैसे चन्दन की लकड़ी।

केसेट ५

सुगन्धी तो उसका स्वभाव है, परन्तु आवृत है। परस्वभाव प्रगट है। जहां पर स्वभाव प्रगट है, वही । इसी को कहते हैं, उपाधि का संबंध ही अशुद्धि है। वैसे कहीं भी अशुद्धि नहीं है। चन्दन में दुर्गन्धि नहीं। परन्तु उपाधि से जो संबंध बना लिया। मैं का शरीर से बुद्धि तक जो संबंध है, यही कीचड़ है। यही दुर्गन्धि है। विकारी, विनाशी आदि है। इसका संग हो गया अतः आप असमर्थ हो गए। आपकी असमर्थता यही है।

जो संकल्प हमारे बन्धन का हेतु है वही योगी की सिद्धि है। क्योंकि आप आत्मबल में रहेंगे। वहाँ यह संकल्प उद्भूत होगा। अभी उपाधि में संकल्प उद्भूत हो रहा है। शून्य पॉवर के बल्ब में जी रहे हैं तो कितना प्रकाश आपमें आएगा।

अहंता से संकल्प है। उपाधि में बैठी है, अतः उपाधि के बल के अनुसार ही बल आएगा। स्वरूप से होने पर भी जितना बल गृहित हो रहा है उतना ही तो बल काम आएगा। कहीं लाख पॉवर के बल्ब में उतनी शक्ति आएगी। जैसे ब्रह्मा आदि में ज्यादा सामर्थ्य दिखाई दे रहा है। परन्तु जब आप विद्युत में जिएँगें जब आप स्वरूप में प्रतिष्ठित होगी तब आप में शिव की सामर्थ्य होगी। सामर्थ्य हो परन्तु भले ही वह बल्ब न लगाए।

बुद्धि का आत्मबल के साथ स्पर्श होना चाहिए। सहज जो अशुद्धि है, स्वाभाविक जो अविद्या है। ये जगत व्यवहार में यही अविद्या है। शरीर से अहंकार तक बीच में आ जाता है, यह अशुद्ध कर देता है। आपकी अंहता का संबंध हो जाता है, शुद्ध बल से सीधे स्पर्श नहीं हो पाता है। अहंता स्वविश्रान्त नहीं हो पाती है। उपाधि विश्रान्त हो जाती है यह स्वाभाविक अशुद्धि है। इसलिए संकल्प करता है पूरा नहीं हो पाता है। आत्मबल स्पर्श नहीं है। यह कमजोरी है।

.....

निजशुद्धयासमर्थस्य कर्तव्येतष्वभिलाषिणः।

यदा क्षोभः प्रलीयेत तदा स्यात्परमं पद्म।।९।।

उस आत्मबल के स्पर्श में सहज अशुद्धि है उससे व्याप्त होकर जब इच्छा करता है (तो वह पूरी नहीं होती हैं परन्तु) जब क्षोभ लीन हो जाए तो वह परमपद में प्रतिष्ठित हो जाता हैं।

पहले एक उदाहरण देखेंगे तब विषय को आगे बढाएँगे। जैसे विद्युत तार में बह रही हैं अभी उसकी शक्ति अव्यक्त हैं। ठीक। अब किसी माध्यम से वह शक्ति व्यक्त होती हैं। माना कि बल्ब एक माध्यम हैं, तो विद्युत की प्रकाश शक्ति बल्ब के माध्यम से अभिव्यक्त हुई, ठीक। अब माना कि बल्ब ५० वॉल्ट का हैं तो जो असिमित विद्युत सामर्थ्य हैं वही ५० वॉल्ट के बल्ब से अभिव्यक्त हुई। यहाँ तक स्पष्ट हैं, यदि नहीं है तो दोबारा (पुनः) पढ़ें।

अब ध्यान से समझे कि विद्युत में जो असीमित सामर्थ्य हैं वह १०० वॉल्ट या ५०० वॉल्ट का बल्ब भी जला सकती हैं परन्तु हमने जो बल्ब लगाया इसकी सामर्थ्य ५० वॉल्ट की ही हैं बिजली जली या प्रकाश हुआ, तो जो असीमित सामर्थ्य वाली विद्युत भी वही विद्युत बल्ब में आकर सीमित (५० वॉल्ट की) हो गयी।

अब यहाँ यह बताते हैं कि यदि बल्ब के अन्दर अभिव्यक्त प्रकाश शक्ति अपने आप को तार में बहनें वाली विद्युत शक्ति से अलग मान ले तो गड़बड़ हैं। क्या गड़बड़ है कि एक तो वह सीमित हो गई ५० वॉल्ट में, दूसरा वह पैदा होने वाली व समाप्त होने वाली हुई अर्थात् जब बल्ब का स्वीच चालू किया तो बल्ब में प्रकाश पैदा हुआ और जब स्वीच बन्द किया तब वह प्रकाश समाप्त या विलीन हो गया। स्पष्ट है हमने यह समझा कि असीम सामर्थ्य वाली विद्युत थी वह उपाधि (माध्यम, यहाँ बल्ब में आकर) सीमित हो गई, पैदा व नष्ट होने वाली हो गई।

आइए, पहले एक और उदाहरण देखें फिर समझने का प्रयास करेंगे। एक घड़ा हैं और उसमें पानी भरा हैं और उसमें आकाश दिखाई दे रहा हैं। परन्तु घड़े में जो आकाश (स्पेस) हैं, जिसे शास्त्रीय भाषा में घटाकाश कहते हैं वह सीमित हैं। आकाश में व्यापक्ता हैं, चाहे जितना सामान रख लो, परन्तु घड़े के अन्दर सीमितता है। उसमें १० सेट (किलों) ही चना आ सकता हैं। तो जो आकाश व्यापक था, सीमित था वही आकाश घड़े के अन्दर आकर, उपाधि (यहाँ घड़ा) के कारण

सीमित हो गया। जब घड़ा बना तो घटाकाश पैदा हुआ, जब घड़ा फूटा तो वह घटाकाश व्यापक हो गया। स्पष्ट हैं।

अब आप थोड़ा सूक्ष्मता से यदि देखें तो देखिए जो घटाकाश हैं वह भी आकाश ही हैं, जो व्यापक आकाश हैं उससे अभिन्न नहीं हैं, अर्थात् उससे अलग नहीं हैं परन्तु बल्ब उपाधि के कारण सीमित मालूम हो रहा हैं।

ठीक इसी प्रकार चेतन तत्व व्यापक हैं, ठोस हैं, सभी जगह हैं। यहाँ-वहाँ जीव के रूप में या अन्य रूप में व्यक्त हो रहा हैं। व्यक्त होने के लिए माध्यम चाहिए, तो माध्यम बना जीव । यह शरीर, मन, बुद्धि आदि। तो ये है माध्यम। उसे शास्त्रीय भाषा में उपाधि कहते हैं। तो वह व्यापक चेतन, जीव के माध्यम में सीमित सा मालूम होता है, है व्यापक।

तो माध्यम या उपाधि के कारण (शरीर, मन, बुद्धि आदि) उसमें सहज अशुद्धि आ गई। सही शब्द में कहे तो आ नहीं गई, महसूस होने लगी या आभास होने लगा। क्योंकि शरीर पैदा होने वाला व समाप्त होने वाला हैं। यह इतने समय तक रहेगा

तो सीमितता आ गई। सही शब्द में कहे तो आ नहीं गई, महसूस होने लगी या आभास होने लगा। क्योंकि शरीर पैदा होने वाला व समाप्त होने वाला हैं। यह इतने समय तक रहेगा तो सीमितता आ गई। हम यदि चेतन को शरीर मान लें, तो हम सीमित हो गए जैसे घड़े में सीमित आकाश अपने-आपको व्यापक न मानते हुए, घटाकाश के रूप में सीमित मान लें।

तो जो व्यापक चेतन हैं वह उपाधि (शरीर) के कारण सीमित मालूम हो रहा हैं यह सहज अशुद्धि हैं।

हम यहाँ यह बताते हैं कि चेतन जो कि सर्व-व्यापक हैं वह उपाधि (शरीर) के कारण सीमित मालूम हो रहा हैं, यह सहज अशुद्धि हैं।

हम यहाँ यह बताते हैं कि चेतन जो कि सर्वव्यापक हैं, सर्व कर्त्तृत्व हैं, सर्वज्ञ हैं, पूर्ण तृप्त हैं नित्य हैं।

सब कुछ करने वाला, जानने वाला, पूर्ण तथा सदा रहने वाला हैं। वह उपाधि (माध्यम-यहाँ शरीर) के कारण शरीर में वाले आकार में सीमित, शरीर के अनुसार सामर्थ्य वाला कार्य करने वाला, शरीर को जानने वाला, अपने शरीर में तृप्त तथा शरीर के उत्पन्न होने पर, अपनी उत्पत्ति तथा समाप्त होने पर अपना नाश मानता हैं तथा समझता हैं। तो यह जो सारा दोष, चेतन में मालुम हो रहा हैं वह क्यों मालूम हो रहा हैं, उपाधि के कारण। तो जब हम उपाधि (शरीर) में बैठकर संकल्प करते हैं तो सीमित उपाधि के कारण, वह संकल्प सीमित सामर्थ्य वाला होता हैं, सीमित बल वाला होता हैं।

इस श्लोक (कारिका) में आगे बताते हैं कि जब क्षोभ प्रलीन हो जाए हम परमपद में प्रतिष्ठीत या स्थित हो जाते हैं।

अब यह क्षोभ क्या हैं? क्षोभ हैं अपने आपको अलग मानना। जब हम अपने आप सभी माध्यम में मान लेंगे तो कहेंगे कि क्षोभ प्रलीन या समाप्त हो गया। सभी माध्यम या उपाधि में अपनी ही अभिव्यक्ति मानना ही क्षोभ भाव प्रलीमेत हैं।

अभी हमने अपने शरीर में अपनी व्याप्ति मानी हैं तो हमारे संकल्प से हमारा नेत्र खुलता हैं, बन्द होता हैं, हमारा शरीर चलता हैं, हम बोलते हैं आदि। जब सारे जगत में हम अपनी व्याप्ति मान लेगे तो सारा विश्व हमारे संकल्प के अनुसार कार्य करेगा।

.....

शलोक ९ का अभ्यास

क्रोध आदि उदाहरण के द्वारा यह देखने का प्रयास करे कि शब्दों के द्वारा जो भी अभिव्यक्ति होती हैं। (विचारों की या भावों की) वह पूरी तरह से विचार या भाव को अभिव्यक्त नहीं कर पाती हैं, इसे ही सहज अशुद्धि कहते हैं।

इस प्रकार अनुभव करें कि स्पन्दशक्ति की जो असीम सार्मथ्य हैं वह हममें, हमारी सिमीतता के कारण, सीमित रूप से अभिव्यक्त हो रही हैं।

श्लोक-९

निजशुद्धयासमर्थस्य कर्तव्येष्वभिलाषिणः।

यदा क्षोभः प्रलीयेत तदा स्यात्परमं पदम्।।९।।

इस कारिका या श्लोक को समझने से पहले दो-एक उदाहरण देखते हैं। जैसे मान लो हमें किसी को मिठाई का स्वाद बताना हैं-माना गुलाब जामुन का। तो जैसे ही हमने उसका स्वाद व्यक्त करना चाहा हैं तथा कहा कि मीठा, तो मीठा स्वाभाविक रूप से कहने के कारण (.....) आ गया। क्योंकि उसके स्वाद को हम पूरी तरह कभी भी व्यक्त नहीं कर

सकते। जब हम कहेंगे कि (.....) तो रसगुल्ला भी (.....) होता हैं। हम कहेंगे कि मावे की मिठाई ।तो मावे की मिठाई तो मावे की तो अन्य मिठाई भी होती हैं आदि-आदि। तो जब भी हम किसी भाव या विचार को अभिव्यक्त करते हैं, तो शब्दों की सीमा होने के कारण हम अपने भाव या (.....) को १००... व्यक्त नहीं कर सकते। अब यह जो शब्दों की सीमा हैं, इसी को कहते हैं कि अभिव्यक्त करने की स्वाभाविक या सहज अशुद्धि।

तो कोई भी चिज़, वस्तु, भाव या विचार प्रकट होता हैं तो शब्द, आकार आदि के कारण उसमें स्वाभाविक (.....) आ जाता हैं इसे शास्त्र की भाषा में अशुद्धि कहते हैं। यह अशुद्धि विचार या भाव में नहीं, यह अशुद्धि या (.....) शब्द के कारण हैं।

एक और उदाहरण देखते हैं जैसे हमने मिट्टी का कोई पात्र या बर्तन बनाया। तो आकार का (.....) हैं, मिट्टी का नहीं। घड़ा पैदा या उत्पन्न हुआ, नष्ट होगा। मिट्टी न पैदा हुई न नष्ट होगी।

तो क्या जाना कि जब भी कुछ (.....) होगा तो उसमें स्वाभाविक रूप से अशुद्धि आ ही जाती हैं।

तो कारिका में कहते हैं कि अपना स्वरूप जो कि चैतन्य हैं, सर्वशक्तिमान हैं, वह इस शरीर के रूप में व्यक्त हुआ तो शरीर में स्वाभाविक से अशुद्धि हैं। शरीर पैदा हुआ हैं, एक दिन समाप्त हो जाएगा। लेकिन अपना जो चैतन्य स्वरूप हैं वह सीमित नहीं हैं। इसे पहले उदाहरण से समझेगे। कि विद्युत हैं, तार में बह रही हैं, उसमें बहुत सामर्थ्य हैं। अब मान लो १०.....का बल्ब लगाया। तो विद्युत ..... तो हो गई, अभिव्यक्त या प्रकट तो हो गई, परंतु कितनी, जितनी..... की सामर्थ्य हैं।.....में स्वाभाविक रूप अशुद्धि हैं—१०.....यह १०..... की सीमितता बल्ब की हैं, विद्युत की नहीं।

ठीक इसी प्रकार हमें जो अपनी सीमित क्षमता लग रही हैं, वह शरीर के कारण, लग रही हैं, वह सीमित क्षमता शरीर की हैं। अपने स्वरूप (चैतन्य, बल्ब के उदाहरण में विद्युत) की नहीं।

अब इस कारिका में आगे कहते हैं कि जो हमने यह याद रखा है कि मैं शरीर (बल्ब) हूँ, इस विचार को छोड़कर अपने आपको चैतन्य (विद्युत) जाने। माने तो हम उस चैतन्य स्वरूप में स्थित हो सकते हैं या हो जाते हैं।

शलोक ९ का अभ्यास

क्रोध आदि उदाहरण के द्वारा यह देखने का प्रयास करे कि शब्दों के द्वारा जो भी अभिव्यक्ति होती हैं। (विचारों की या भावों की) वह पूरी तरह से विचार या भाव को अभिव्यक्त नहीं कर पाती हैं, इसे ही सहज अशुद्धि कहते हैं।

इस प्रकार अनुभव करें कि स्पन्दशक्ति की जो असीम सार्मथ्य हैं वह हममें, हमारी सिमीतता के कारण, सीमित रूप से अभिव्यक्त हो रही हैं।

तदास्याकृत्रिमो धर्मो ज्ञत्वकर्तृत्वलक्षणः।

यतस्तदीप्सितं सर्वं जानाति च करोति च।।१०।।

तदास्या अस्य अकृत्रिम, जब तक उपाधि के साथ अहंता थी तब तक कृत्रिम धर्म था। अब उपाधि को छोड़ दिया तो अकृत्रिम धर्म हो जाएगा।

दृष्टा में जो बोधात्मक दृष्टि है वह स्वाभाविक है, वस्तु हो या न हो वह रहता है। तो आपके स्वरूप में जो उपलब्धता है जो प्रकाशत्व है उसका विपर्लोक नहीं होता है, सर्वज्ञता, कर्तृत्व (कर्त्तृत्व) रहेगी। अहंता ऐसी जगह पहुँच गई है ज्ञत्व ही कर्तृत्व है।

इप्सित-जो चाहता है उसकी सृष्टि कर सकता है। ईश्वर जो उससे कराना चाहता है योगी में उसी का संकल्प होता है, उसका स्वयं का कोई निमित्त नहीं होता है। उसके व्यवहार को देहाभिमानी समझ नहीं सकता। आप अपने से नीचे के स्तर वाले व्यक्ति को समझ सकते हैं, आपके स्तर से ऊपर स्तर वाले व्यक्ति के व्यवहार को आप नहीं समझ सकते हैं, अनुमान लगा सकते हैं। वह तो विश्वरूपं शरीरं है।

तदास्याकृत्रिमो धर्मो ज्ञत्वकर्तृत्वलक्षणः।

यतस्तदीप्सितं सर्वं जानाति च करोति च।।१०।।

जिस समय हमारा क्षोभ (में अलग हूँ यह भाव) प्रलीन (समाप्त) हो जाता है, उस अवस्था (काल, समय) में हमारा स्वाभाविक धर्म, (सब कुछ) जानने का व (सब कुछ) करने का, बना रहता है ।

स्वाभाविक धर्म का तात्पर्य यह हैं कि उस वस्तु या चीज में यह बात सहज या स्वाभाविक या सामान्य रूप से रहती हैं,

जैसे अग्नि में ताप या गर्मी या दाहिका शक्ति। तो अग्नि में गर्मी या ताप स्वाभाविक रूप से रहता हैं, यह उसका स्वाभाविक धर्म हैं, यह उसका स्वाभाविक धर्म हैं। स्पष्ट हैं, ठीक, अन्यथा पुनः समझें।

ठीक उसी प्रकार जिस अवस्था या समझ हमारे अन्दर क्षोभ प्रलीन हो जाता हैं (मैं अलग हूँ, यह भाव समाप्त हो जाता हैं।) उस अवस्था में (सब कुछ) जानने व करने का धर्म (शक्ति, क्षमता) रहती हैं।

श्लोक (कारिका) की दूसरी लाईन का अनुवाद– उस अवस्था में जो कुछ जानने की इच्छा हो उसे जाना व (किया) जा सकता हैं। संसारी अवस्था में नहीं, अलग महसूस करके नहीं।

अभी हमने अपनी व्याप्ति इस शरीर में कर रखी हैं। तो हम इस शरीर के बारे में जानते हैं, तथा इस शरीर से कार्य करने में सक्षम हम हैं। जैसे इसमें कहीं खुजली हुई, चींटी काटी तो पता चल जाता हैं। हम संकल्प करे तो हमारा नेत्र खुलता या बन्द होता हैं। हम संकल्प (इच्छा) करें तो हमारा हाथ उठता हैं आदि। अभी हमने हमारी व्याप्ति शरीर में मान रखी है या कर रखी हैं अतः हम अपने शरीर में होने वाली गतिविधि को जानते हैं। जब हम अपनी व्याप्ति सर्वत्र कर देगें तब हम पूरी सृष्टि में होने वाली किसी भी स्थिति, जो हम जानना चाहेंगे जान सकेंगे, जो हम करना चाहेंगे कर सकेंगे।

श्लोक १० का अभ्यास

शांत चित्त बैठ जाए तथा ध्यान करें आँखें बन्द कर आँखों को आँखों में टीका दें, या तो श्वास की गति देखें, या विचार देखें, या बन्द नेत्र में दृश्य देखें। जब कोई विचार न हो, कोई दृश्य ना हो आप जागरत हो तथा अहं भाव (मैं हूँ) यह भी चला जाए इस अवस्था में व्यक्ति व्यापक हो जाता हैं, तथा सबकुछ जानने एवं करने में समर्थ हो जाता हैं।

यदि आपको यह लगता हो कि ऐसा नहीं हो रहा हैं तो ऐसी भावना करें, भावना।

तमधिष्ठातृभावेन स्वभावमवलोकयन्।

स्मयमान इवास्ते यस्तस्येयं कुसृतिः कुतः।।११।।

जब हम अधिष्ठान की भावना करते हैं तथा उसमें स्थित होते हैं। इस अवस्था में, स्वभाव में, बैठकर जब हम अवलोकन करते हैं तो बड़ा भारी विस्मय होता है कि मुझसे भिन्न तो कुछ भी नहीं है।इस अवस्था में रहने वाले कि कुत्सित गति कभी नहीं हो सकती है।

हम देख चुकें हैं कि अपना स्वभाव है जानना। प्रत्येक को केवल जानना। ज्ञाता। कोई चीज है तो उसे जानना, नहीं है तो वस्तु के अभाव को जानना। जैसे मान लो कोई मंच है, मंच पर कोई बैठा है तो यह जानना कि कोई बैठा है, कोई नहीं बैठा है तो यह जानना कि कोई नहीं बैठा है। पर्दा है, पर्दे पर चित्र है तो चित्र को जानना, चित्र नहीं है तो चित्र के अभाव को जानना। मन को संकल्प है तो संकल्प को जानना, कोई संकल्प नहीं है तो संकल्प के अभाव को जानना। ठीक है। अपना स्वभाव है जानना। यह हम जानते हैं। यह हम देख चुके हैं।

एक और बात को समझें कि मान लो कोई पर्दा है अब पर्दे पर चित्र आया तो पर्दा चूँकि जड़ है तो पर्दा नहीं जानता कि चित्र आया। पर्दा चेतन होता तो जानता कि चित्र आया। हम चेतन हैं तो हमारे मन रूपी पर्दे पर जैसे ही कोई चित्र (विचार) आता है हम जान जाते हैं। पर्दा चित्र को नहीं जानता है। पर्दे में और हममें यही फर्क है कि पर्दा जड़ है और हम चेतन हैं, पर्दा चित्र को नहीं जानता है हम चेतन हैं अतः चित्र (विचार) को जानते हैं।

इसे थोड़ा और साफ करते हैं। जैसे काँच (मिरर, शीशा, आईना) है तो शीशे के सामने कोई बिम्ब आया, तो शीशे में उसका प्रतिबिम्ब दिखा। बस दिखा। शीशा जड़ है तो उसने प्रतिबिम्ब को नहीं जाना। स्वयं को भी नहीं जाना। हमारे मन रूपी शीशे पर कोई बिम्ब (विचार) आया तो हमने विचार को देखा, विचार को जाना। शीशे के प्रतिबिम्ब के लिए तो बिम्ब की आवश्यकता (जरुरत) है, परन्तु मन रूपी शीशे के लिए बिम्ब की आवश्यकता नहीं है। तो क्या फर्क देखा कि शीशा जड़ होने से शीशा प्रतिबिम्ब को नहीं जानता, परन्तु हम चेतन हैं अतः विचार को जानते हैं।

जब पर्दे पर कोई चित्र नहीं होता है तो चित्र का अभाव या अभाव दशा होती है। शीशे के सामने कोई बिम्ब न हो तो बिम्ब की अभाव दशा होती है। इसी प्रकार मन रूपी पर्दे या शीशे पर कोई विचार न हो तो हम यह जानते हैं कि कोई विचार नहीं

है या अभाव को भी प्रकाशित करते हैं।

अर्थात् सारांश क्या निकला कि मन में उठने वाले विचार को भी हम जानते हैं, कोई विचार न हो तो विचार के अभाव को हम जानते हैं।

(अब एक बात और समझें कि आज तक कोई भी चित्र पर्दे को प्रभावित नहीं कर सका, कोई भी प्रतिबिम्ब शीशे में नहीं घुस सका। किसी भी बाढ़ के चित्र से पर्दा गीला नहीं हुआ, किसी भी अग्नि के चित्र से पर्दा जला नहीं।)

तो क्या जाना कि हम भाव को भी जानते हैं अर्थात् प्रकाशित करते हैं, अभाव को भी जानते हैं या प्रकाशित करते हैं। हम अभाव व भाव दोनों को प्रकाशित करते हैं। हम न तो भाव रूप हैं न ही अभाव रूप है। और चूँकि हम जानते हैं तो चेतन रूप हैं पर्दे, शीशे या खम्बे के समान जड़ नहीं है।

श्लोक ११ का अभ्यास

अभ्यास की भूमिका-कई बार अभ्यास को सरल बनाने के लिए भावना करना पड़ती हैं। चूंकी इस श्लोक में सिद्धावस्था का वर्णन हैं, तथा हम तो साधक कि बात कर रहे हैं, और साधक सिद्ध नहीं हैं। अतः भावना करना होगी, अतः निम्न प्रकार से भावना करें।

प्रत्येक वस्तु, जीव, जन्तु, पदार्थ, शब्द (स्वयं सहित) को चिद् अग्नि में स्वाहा कर दें, अर्थात् सब कुछ मूल में चैतन्य रूप हैं। ऐसी भावना करें, जानें या महसूस करें।

महसूस करना अर्थात् अनुभव करना जब तक अनुभव न हो तब तक मानें कि ऐसा हैं, तथा ऐसी ही भावना को दृढ़ करें, पक्का करें।

तो अभ्यास क्या बना कि जितने भी लोग हैं, मकान हैं, कमरे हैं, जीव हैं, वो सब में हूँ। सब में अपनी व्याप्ति करें।

शरीर में हूँ।

वस्त्र में ही हूँ।

माता में हूँ।

पिता में हूँ।

भाई भी में ही हूँ।

पत्नि भी में ही हूँ।

पूत्र भी में ही हूँ।

जीव भी में ही हूँ। आदि-आदि।

तो आइए अब कारिका को देखें

नाभावो भाव्यतामेति न च तत्रास्त्यमूढता।

यतोऽभियोगसंस्पर्शात्तदासीदितिनिश्चयः।।१२।।

अभाव की भावना नहीं हो सकती है। जिस चीज का अस्तित्व है ही नहीं उसकी भावना कैसे कर सकते हैं? कोई तत्व है उसकी भावना होती है। बल्कि जिससे अभाव को भी जाना जाता है वह अपना स्वरूप है यह निश्चय हुआ।

(अलग से -अर्थात् जो अभाव के संस्पर्श को भी प्रकाशित करता है, अतः वह अभाव नहीं है, वरन् अभाव को जानने वाला तथा अभाव से भिन्न है यह निश्चय होता है।)

अनुभव की बात-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति।

अतस्तत्कृत्रिमं ज्ञेयं सौषुप्तपदवत्सदा।

न त्वेवं स्मर्यमाणत्वं तत्तत्त्वं प्रतिपद्यते।।१३।।

(१५.०० -१०) इसलिए अभाव रूप समाधि कृत्रिम है, तथा ज्ञेय है। एकरस रहने वाली नहीं है। उस अवस्था का अभाव हो जाता है। कैसे जैसे-सुषुप्ति। उससे काम तो नहीं बना। *वह जड़ समाधि सुषुप्ति के समान कृत्रिम है। कृत्रिम है, इसलिए नित्य*

नहीं है। वह अभाव वाली समाधि सुषुप्ति के समान अवस्था है, आप अवस्था के ज्ञाता हो सकते हैं, अवस्था नहीं। जैसे अभाव की स्मृति होती है, वैसे तत्व की स्मृति नहीं हो सकती है।

श्लोक-१३

हम यह जानते हैं कि एक होती है अवस्था तथा दूसरा है अस्तित्व या आधार। जैसे चाँदी की एक अँगुठी हैं। तो अवस्था हैं अँगुठी तथा अस्तित्व हैं चाँदी। अब हम यह जानते हैं कि अवस्था है आने-जाने वाली। अस्तित्व है सदा रहने वाला। तो अँगुठी आज हैं, कल नहीं रहेगी, कल को कुछ और होगी विछियाँ या पायजेब या कुछ और। चाँदी कल भी थी, चाँदी अँगुठी में भी हैं तथा आगे विछियाँ में भी रहेगी। उदाहरण स्पष्ट हैं, न हो तो एक बार और पढ़े व समझें।

अब आगे बढ़ते हैं हम हैं अस्तित्व, चेतन, सत्ता। हममें जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति (गहरी नींद, स्वप्न रहित निद्रा) अवस्था आती हैं। हम सभी अवस्थाओं में सत्ता रूप में रहते हैं।

तो आप इस कारिका में कहते हैं—

अतस्तत्कृत्रिमं ज्ञेयं सौषुप्तपदवत् सदा।

न त्वेवं स्मर्यमाणत्वं तत्तत्त्वं प्रतिपद्यते।।१३।।

कि समाधि वाली स्थिति हैं, अवस्था हैं, वह कृत्रिम हैं, आने-जाने वाली एक अवस्था हैं, वह सदा रहने वाली नहीं हैं, उस अवस्था को जाना जाता हैं, इसे कहते हैं कि वह ज्ञेय है। (ज्ञेय-जो जाना जाता है।) समाधि अर्थात् जाग्रत अवस्था में एक ऐसी स्थिति जिस समय मन को कोई विचार न हो।

तो इस कारिका (या श्लोक में) बताते हैं कि समाधि (विचार के अभाव की अवस्था या स्थिति) की अवस्था, एक अवस्था हैं वह जानी जाती हैं। चूँकी आने-जाने वाली हैं, सदा रहने वाली नहीं हैं अतः वह अपना स्वरूप या अस्तित्व नहीं हैं।

यह समाधि की अवस्था, सुषुप्ति के समान एक अवस्था हैं। इन दोनों अवस्थाओं को जो जानता हैं, वह आपका स्वरूप हैं। आपका स्वरूप जानने वाला ही हैं।

इसे सरल करने के लिए हमें तीन शब्द समझना होगा-ज्ञाता, ज्ञान व ज्ञेय। ज्ञाता अर्थात् जानने वाला। ज्ञेय अर्थात् जो जाना जाता हैं। ज्ञान अर्थात् जानने की क्रिया।

अब जैसे मान लो हमारे सामने कोई वस्तु आई-फूल। तथा फूल का हमें ज्ञान हुआ। तो हम हुए ज्ञाता तथा फूल हुआ ज्ञेय।

यदि हमारे सामने दूसरी वस्तु आई-पुस्तक तो पुस्तक हुई ज्ञेय तथा हम हुए ज्ञाता।

इसी प्रकार हमारी एक अवस्था हैं जाग्रत तथा हम अपनी अवस्था जाग्रत को जानते हैं, तो हम हुए ज्ञाता तथा जाग्रत अवस्था हुई ज्ञेय। इसी प्रकार समाधि व सुषुप्ति अवस्था भी हैं ज्ञेय तथा हम हैं ज्ञाता। हम कभी भी ज्ञेय नहीं हो सकते हैं। (क्योंकि यदि हम ही ज्ञेय हो जाँएगें तो ज्ञाता कोई दूसरा होगा जो कि संभव नहीं हैं।

अवस्थायुगलं चात्र कार्यकर्तृत्वशब्दितम्।

कार्यताक्षयिणी तत्र कर्तृत्वं पुनरक्षयम्।।१४।।

एक स्वरूप में दो अवस्था का भान होता है। आप शान्त बैठे हैं, घोर अन्धकार है, आपके नेत्र बन्द हैं, एक संकल्प हुआ हो संकल्प की सत्ता कौन है, आप है, एक में दो भाव होगए। सत्ता चेतना है, जड़ में परामर्श नहीं होता है। इसलिए झट जो होता है प्रकाशित हो जाता है। यह परामर्श है, इससे एक में दो भाव हो गए एक ज्ञाता एक ज्ञेय । आगम के अनुसार यही सृष्टि हो गई। कार्य व कर्ता। एक कार्य हो गया एक कर्ता हो गया। भोग और भोक्ता। यह बना तो एक ही तत्वमें, दोनों एक अन्तर है। वह जो ज्ञेय है, वह उत्पत्ति-विनाशवान है, जो ज्ञाता है वह नित्य है।एक सत्ता में होने पर भी ज्ञेय परिवर्तन शील है, भोक्त परिवर्तनशील नहींहोता है। दोनों में यह अन्तर है। भ्रम यह होजाता है ज्ञेय न हो तो ज्ञाता की प्रतीति नहीं होती है, यही भ्रम है।

श्लोक-१४

अवस्थायुगलं चात्र कार्यकर्तृत्वशब्दितम्।

कार्यता क्षयिणी तत्र कर्तृत्वं पुनरक्षयम्।।१४।।

जब कोई भी क्रिया होती हैं तो एक होता हैं कर्ता अर्थात् कार्य करने वाला दूसरा होता हैं, कार्य। जैसे कोई कुछ सुन रहा हैं तो सुनने वाला हुआ श्रोता तथा कार्य सुनना। कोई गाना गा रहा हैं तो गाने वाला गायक तथा कार्य हुआ गाना। कोई भाषण दे रहा हैं तो बोलने वाला हुआ वक्ता तथा कार्य हुआ बोलना या भाषण देना।

इसी प्रकार सामने भोग हो तो उसे भोगनेवाला हुआ भोक्ता।

तो हमने क्या जाना? कि एक होता हैं कार्य तथा कार्य करने वाला होता हैं कर्ता। यह पहली सीढ़ी हमने जानी।

अब आगे बढ़ते हैं दूसरी सीढ़ी की ओर।

तो देखों कार्य बदलता रहता हैं, कर्ता वही रहता हैं। जैसे कोई गायक हैं। तो गायक हैं कर्ता तथा गाना हैं कार्य। अब देखों गायक वही हैं परन्तु गाना बदल रहा हैं। गाना परिवर्तनशील हैं।

अब तीसरी सीढ़ी की ओर बढ़ते हैं।

कर्ता, कार्य होने पर कार्य करता हैं, कार्य न होने पर कार्य नहीं करता हैं। जैसे कुम्हार हैं। उसका कार्य घड़ा बनाना। जब घड़ा बनाना होता हैं, घड़ा बनाता हैं, जब नहीं बनाता हैं तो नहीं बनाता हैं बैठा रहता हैं। यह शायद स्पष्ट न हो तो दूसरा उदाहरण लेते हैं। जैसे आप बोलते हैं, तो बोलना कार्य हुआ। आप बोलने वाले हो अतः आप कर्ता बने। जब आपको बोलने की आवश्यकता नहीं है, आप चुप हैं तो कार्य समाप्त हो गया, परन्तु कर्ता हैं। आप तो हैं, भले ही आप चुप हैं। तो देखें कार्य आरम्भ होता हैं, समाप्त होता हैं, उत्पत्ति-विनाश वाला हैं, परन्तु कर्ता सदा रहता हैं, कार्य हो तो भी, कार्य न हो तो भी।

कार्योन्मुखः प्रयत्नो यः केवलं सोऽत्र लुप्यते।

तस्मिंल्लुप्ते विलुप्तोऽस्मीत्यबुधः प्रतिपद्यते।।१५।।

आपका प्रयत्न जब जगत के अभिमुख होता है, जब बाह्य की ओर अभिमुख होगा तभी इन्द्रियों का व्यापार होता है। क्योंकि तभी मन बाह्य अभिमुख होता है। क्योंकि वह उससे अपने अस्तित्व को सिद्ध करता है। यह शरीर से अपने अस्तित्व को सिद्ध करता है। यह बोलता, सुनता, जानता, संकल्प करता है इससे अपने अस्तित्व को सिद्ध करता है ऐसा न हो तो अपने अस्तित्व को मानता नहीं है। ऐसा अबुध मानता है। अबुध -इसके लुप्त होने पर स्वयं को लुप्त मानता है।

विद्युत का अस्तित्व हम बल्ब आदि से सिद्ध करता है, ज्ञेय, भोग भोक्ता के लिए है। नहीं तो भोग के पीछे दौड़ने लगता है, जगत तुम्हारे लिए हैं कि तुम जगत के लिए हो। कार तुम्हारे लिए कि तुम कार के लिए हो। भोग भोक्ता से जी रहा है। आपको खेलने की इच्छा हुई आप बाहर वृत्ति ले गए। खेलने की इच्छा समाप्त हो गई तो ।

अबुध सोचता है कि जगत गया तो मैं मरा, मकान गिरा तो समझता है कि मैं मरा, लड़का गया तो कहता है कि मैं मरा, यह मोह के कारण, इस प्रकार मन, इन्द्रियों को लेकर अपने को समझता है।

वक्ता चुप बैठ गया तो उसके वक्तृत्व का विनाश नहीं हुआ। कारण रूप में तो है ही, कार्य रूप में नहीं है।

.....

श्लोक-१५

चूँकी बौद्ध आचार्य समाधि को ही अस्तित्व मानते हैं, अतः अभाव दशा को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि

कार्योन्मुखः प्रयत्नो यः केवलं सोऽत्र लुप्यते।

तस्मिल्लँटते विलुप्तोऽस्मीत्यबुधः प्रतिपद्यते।।१५।।

हम देख चुके है कि कार्य उत्पत्ति-विनाश वाला हैं, कर्ता अनश्वर हैं। कर्ता का नाश नहीं होता हैं।

इस प्रकार हमारे मन विचार निरन्तर चलते हैं तथा हम विचार के दृष्टा हैं। किसी प्रकार से यदि विचार आना बन्द हों जाए तथा हम जाग्रत अवस्था में हो तो वह दशा या अवस्था समाधि कहलाती हैं।

तो कहते हैं कि जो अल्पज्ञानी हैं वह क्या समझता हैं? कि समाधि दशा में जब कोई कार्य (मन पर कोई विचार या दृश्य)

नहीं रहता हैं, वह स्वयं को ही लुप्त जानता हैं मानता हैं।

न तु योऽन्तर्मुखो भावः सर्वज्ञत्वगुणास्पदम्।

तस्य लोपः कदाचित्स्यादस्यानुपलम्भनात्।।१६।।

जब आपने अपनी बुद्धि को अन्तर्मुख किया तो विशिष्ट चेतनता, सामान्य रूप को प्राप्त हो गई। यह सामान्य रूपता ही सर्वज्ञत्व आदि का मूल केन्द्र है। वृत्ति (विशिष्टता) का लोप होने पर भी स्वरूप का लोप नहीं होता है। ज्ञाता के बिना ज्ञेय की उपलब्धि हो ही नहीं सकती है।

बल्ब से विद्युत का प्रकाश बाहर जा रहा है।

चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य की ओर मुख वाला हुआ। परिछिन्नता समाप्त।

दर्पण के माध्यम से प्रकाश छोड़ते हैं यदि उसका मुख स्रोत की ओर हो जाए।

लहर जब समुद्र या जल रूप हुई तो प्रत्येक लहर में वही है।

जैसे बीज में सबकुछ होता है, रंग, फल, पत्ते आदि। अनभिव्यक्त होने से लोप नहीं कह सकते हैं।

विद्युत के बिना बल्ब सिद्ध हो ही नहीं सकता है।

दृश्य के नाश से दृष्टा का नाश नहीं होता है।

अन्तश्चक्र- इन्द्रिय, अन्तःकरण आदि

सर्वज्ञ आदि वैभव का आश्रय वही चैतन्य स्वरूप है। उसका कभी भी विनाश नहीं हो सकता है। चाहे उन्मेष करो या निमेष करो।

चरम वृत्ति में अन्य का अभाव हो गया तो आपका स्वभाव बचा, तब व्यापक स्वरूप का सर्वत्र अनुभव होता है।

.....

न तु यो ऽन्तर्मुखो भावः सर्वज्ञत्वगुणास्पदम्।

तस्य लोपः कदाचित् स्यादन्यस्यानुपलम्भनात्।।१६।।

देखो इस कारिका को जानने समझने के लिए हमें दो शब्द समझना होंगे-एक शब्द विशिष्ट तथा दूसरा शब्द सामान्य। विशिष्ट अर्थात् विशेष, जैसे समुद्र की लहर, तो प्रत्येक लहर हैं विशिष्ट तथा समुद्र या जल हैं सामान्य। प्रत्येक लहर चाहे वह २ इंच ऊँची हो या २ फीट, में जल या समुद्र हैं। उसका (लहर का) अस्तित्व जल ही हैं। प्रत्येक लहर का अस्तित्व जल से हैं। जल सामान्य हैं, लहर विशिष्ठ हैं।

जब हम समुद्र रूप होकर लहरों को देखेंगे तो पाएँगे कि प्रत्येक लहर में समुद्र (हम) ही हैं। यदि हम अपने आप को समुद्र रूप जानें तो सारी तरंगों में अपने आप को ही पाएँगे।

दूसरा उदाहरण हैं आभूषण। मान लो हम सोने के आभूषण की बात करें तो अगुँठी, हार, टीका आदि सभी आभूषण हैं। आभूषण हैं विशिष्ट तथा सोना हैं सामान्य। सभी आभूषणों का अस्तित्व सोने से हैं सोना हैं सामान्य तथा आभूषण हैं विशिष्ट।

एक और उदाहरण लें कि विद्युत तारों में बह रही हैं, उसमें पंखा, ट्युबलाईट, फ्रीज, कूलर, हीटर आदि उपकरण लगे हैं व चालू हैं तो पंखे में जो विद्युत हैं वह हुई विशिष्ट, इसी प्रकार ट्युबलाईट, फ्रीज आदि में जो विद्युत हैं वह विशिष्ट हैं तथा सामान्य रूप से तार में बहनेवाली विद्युत से अस्तित्व प्राप्त कर रही हैं। तो विद्युत हैं सामान्य, माध्यम पंखे आदि में मालूम हो रही हैं विशिष्ट।

इसी प्रकार कारिका में बताते हैं कि जब आप अन्तर्मुख हुए तो क्या होता हैं। देखों अभी विचार चल रहे हैं। वृत्ति (विचार) चल रही हैं। सुखाकार वृत्ति, दुःखाकार वृत्ति, राग, द्वेष, ममत्व, मोह आदि ऐसी वृत्ति चल रही हैं। ये सारी वृत्तियाँ हैं विशिष्ट । प्रत्येक विचार हैं विशिष्ट। इस विशिष्ट की सत्ता हैं, स्वरूप या दृष्टा या चेतन।

अब हम विचार को कहेंगे लहर तथा चेतन को कहेंगे समुद्र। तो प्रत्येक लहर (विचार) हैं विशिष्ट तथा उसका अस्तित्व टिका हैं सामान्य (समुद्र, चेतन, दृष्टा) पर।

तो कारिका (श्लोक) में बताते हैं कि जब आपने अपने आप अन्तर्मुख किया, अन्दर जाना शुरू होगा तो क्या हुआ विचार तो विशिष्ट रूप था उसकी सत्ता देखी तो देखा कि दृष्टा या चेतन हैं तथा उस चेतन का गुण सभी कुछ जानने में समर्थ। क्योंकि जैसे समुद्र रूप में जो जल हैं वह प्रत्येक लहर को जानता हैं इसी प्रकार विचारों को जो सत्ता देता हैं वह प्रत्येक लहर को जानता हैं, सर्वज्ञाता का गुण रखता हैं।

आगे कहते हैं कि समुद्र या जल लोप हो जाए तो कोई भी लहर का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता हैं।

विद्युत का लोप हो जाए पंखा आदि में विद्युत की सिद्धि नहीं हो सकती।

चेतन न हो तो किसी अन्य की सिद्धि नहीं हो सकती हैं।

....

ज्ञाता न हो तो किसी को भी ज्ञान की सिद्धि नहीं हो सकती।

भोक्ता न हो तो किसी को भी भोग की सिद्धि नहीं हो सकती।

अहं न हो तो किसी को भी इदं की सिद्धि नहीं हो सकती।

तस्योपलब्धिः सततं त्रिपदाव्यभिचारिणी।

नित्यं स्यात्सुप्रबुद्धस्य तदाद्यन्तेऽपरस्य तु।।१७।।

३७.००-१२

कहते है कि तीन कोटि होती है- अप्रबुद्धि, प्रबुद्ध, सुप्रबुद्ध। (*सुप्रबुद्ध की स्थिति तीनों पदों (दशा जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति) में लगातार स्वरूप में रहती है। उसकी बुद्धि ऐसी अवस्था में रहती है कि वह सीधे ही ग्राह्य करती है। जैसे हंस दूध व पानी को अलग कर पाता है। उसकी बुद्धि सीधे तत्व को ग्रहण करती है। उसको जगत बाधा नहीं पहुँचा सकता क्योंकि वो तो स्वरूप में ही बैठा रहता है। उदाहरण-जनक।*

पर्दे पर केन्द्रित होने से सभी चित्रों के अधिष्ठान पर पहुँचता है।

इसके अतिरिक्त जो प्रबुद्ध है, उसे स्वप्न अपना वैभव है यह समझ में आता है परन्तु जाग्रत भी अपना ही वैभव है यह समझ में नहीं आता है। वह उपदेश का अधिकारी है। उसे उपदेश दिया जा सकता है।

तदाधि-स्वप्न,

तदान्ते-सुषुप्ति अवस्था

तस्य-सर्वगत चैतन्य स्वरूप की उपलब्धि उसको सतत है। सुप्रबुद्ध को।

सतत है, नित्य है, अव्यभिचारिणी है।

अपरस्य-प्रबुद्धस्य

तदाद्य-स्वप्न

अन्त-सुषुप्ति

सत्, चित् आनन्द

सत्-सत्ता-जाग्रत

चित्-स्वप्न

आनन्द-सुषुप्ति

तस्योपलब्धिः सततं त्रिपदाव्यभिचारिणी।

नित्यं स्यात् सुप्रबुद्धस्य, तदाद्यन्ते परस्य तु।।१७।।

इस कारिका को जानने समझने के पहले चार या तीन तरह या वर्ग को समझना होगा। अप्रबुद्ध, प्रबुद्ध तथा सुप्रबुद्ध। अप्रबुद्ध उसे कहा हैं जो संसार सागर के भंवर में फँसा हुआ हैं। विषय सुख के पीछे भाग रहा हैं तथा विषय उसको दौड़ा रहे हैं। पद, मान, सम्मान, प्रतिष्ठा, पुत्र, वैभव, स्त्री, धन आदि के पीछे भाग रहा हैं तथा उनसे शान्ति या सुख चाहता हैं

परन्तु सुख प्राप्त नहीं कर पा रहा हैं तथा उनसे शान्ति या सुख चाहता हैं परन्तु सुख प्राप्त नहीं कर पा रहा हैं क्योंकि एक तो पदार्थ में सुख हैं ही नहीं, दूसरा एक वासना पूरी हो भी नहीं पाती कि नई वासना खड़ी हो जाती हैं, उसे कहा अप्रबुद्ध।

दूसरा वर्ग या (.....) हैं प्रबुद्ध। जिसको सांसारिक विषयों में अरुचि होने लगी हैं, जो शाश्वत सुख व आनन्द चाहता हैं। जो संसार रूपी भंवर से निकलना चाहता हैं। जिज्ञासु हैं, (.....) उसे प्रबुद्ध कहा हैं।

सुप्रबुद्ध हैं तीसरा वर्ग। इसमें वे व्यक्ति आते हैं, जो संसारी बन्धनों से मुक्त हो चुके हैं। जो शिवास्था में ही हैं। ज्ञानी हैं।

अब समझने की बात है कि आगम या शास्त्र के उपदेश का अधिकारी कौन है? तो देखे जो अप्रबुद्ध है–विषय के पीछे भाग रहा हैं, विषय उसे दौड़ा रहे हैं उसे उपदेश सीधे कुछ काम (कार्य) नहीं करेंगे तो वह उपदेश का अधिकारी नहीं हैं।

जो सुप्रबुद्ध हैं वह ज्ञानी। आत्म तत्व में स्थित हैं, उसे उपदेश की आवश्यकता नहीं हैं।

अब बचा प्रबुद्ध, जिसे संसार में रस नहीं आ रहा हैं तथा संसार सागर से निकलना चाहता हैं, वह उपदेश का अधिकारी हैं।

तो अभी तक आपने तीन वर्ग या श्रेणी जानी, अप्रबुद्ध, प्रबुद्ध तथा सुप्रबुद्ध।

अब एक दूसरी बात को समझे या जानें, तीन अवस्था होती हैं, जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति। इन्हें थोड़ा देख लें। जाग्रत अवस्था जिसमें हम सब जानते हैं, जिसमें हम जागते हैं, खाते हैं, पीते हैं, पढ़ते हैं, लिखते हैं, लोगों से मिलते जुलते हैं, व्यवहार करते हैं आदि-आदि।

दूसरी अवस्था हैं स्वप्न। जब हमारी बाहरी इन्द्रियाँ (आँख, नाक, कान, जीभ व त्वचा) का व्यवहार बन्द हो जाता हैं तथा नींद में मन पर जो चित्र चलते रहते हैं, इस अवस्था को स्वप्नावस्था कहते हैं।

तीसरी अवस्था हैं सुषुप्ति। यह स्वप्न रहित नींद की अवस्था हैं, इस अवस्था में हम नींद में हैं तथा मन में कोई विचार नहीं होता हैं। इस अवस्था में हम मूल तत्व स्पन्द में रहते हैं, परन्तु अज्ञान का आवरण होने से बोध नहीं होता हैं।

अब थोड़ा सा स्वप्न अवस्था का विश्लेषण कर लें। जैसे मान ले कि आपने कोई सपना देखा कि आप कहीं जा रहे हैं, अब कोई कुत्ता या जीव आपके पीछे लग गया हैं तथा आप भाग रहे हैं। अब देखों कि आपको सपने में क्या-क्या दिख रहा हैं, आप स्वयं को देख रहे हैं, कुत्ता भी दिख रहा हैं। सड़क भी दिख रही हैं, खेत या (.....) भी दिख रहा हैं, सुर्य का प्रकाश भी दिख रहा हैं। थोड़ा और ध्यान देकर समझे कि सूर्य आदि हमें किसी सपने में दिख सकते हैं, बहुत से मकान, (.....) व्यक्ति, रिश्तेदार आदि भी हम सपने में देख सकते हैं। उनसे वार्तालाप कर सकते हैं।

अच्छा अब आप बताओं कि सपने में आप तो दौड़ रहे हो तो आपको देख कौन रहा है? आप कहोंगे कि आप ही देख रहे हो। हम जरा बात कहना चाहते हैं कि देखों आप सारा जगत देख रहे हो, सब कुछ वहाँ हैं जड़ व चेतन सब। मकान, दुकान, घर, जीव, रिश्तेदार सब हैं, आपने उन सब में अपना भी एक रूप बना रखा हैं, एक विशेष आकृति को आपने समझा या माना या जाना कि यह मैं हूँ, बस। बस, जैसे ही एक को मैं कहा कि बाकि सब अलग हो गया सारी जगह जगह हो गयी, अब वह कुत्ता भी जगह हो गया, अब वह कुत्ता उस मैं के पीछे लग गया तथा सपने वाला मैं (विशेष आकृति) भागने लगा, सारा खेल शुरू हो गया।

जैसे ही आपने सारे दिखने वाले जगत में (सपने में) किसी एक विशेष आकृति को मैं कहा वैसे ही आप एक विशेष आकार रूप में सीमित हो गए तथा अन्य सभी रूप व आकृति अपने भिन्न करके मालूम हो रही हैं। सपने में सारा कुछ अपका (.....) रूप हैं, सब कुछ आप में ही हैं, आपसे बाहर कुछ नहीं हैं। इतना स्पष्ट हैं अब आगे बढ़े।

जाग्रत में भी (कभी-कभी) स्वप्न का लक्षण घटित होने लगता हैं, जब आप मनोराज्य करते हैं। अब देखो मनोराज्य चलता हैं तो सारा संकल्प कहो या विचार कहो उससे ही चलता हैं, सपने के समय उस मनोराज्य की स्थिति में सारा जगत आपको अपने अन्दर दिखाई देते हैं, यहाँ भी आपने एक विशेष रूप आकृति में अपनी अहंता (मेरापन, कि यह में हूँ) केन्द्रित कर रखी हैं (मान रखा हैं।) ठीक हैं।

सपने के बारे में आप बहुत अच्छी तरह से जानते हैं कि सपने में दिखने में सारी आकृति रूप आदि आप में थी।

अब कारिका को देखते है कि जो ज्ञानी हैं, सुप्रबुद्ध हैं वह जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में लगातार अपने स्वरूप में स्थिति रहती हैं तथा अपना वैभव करके जानता हैं। वह जानता हैं जाग्रत मेरा वैभव हैं, स्वप्न में भी दिखने वाला सारा जगत में ही हूँ। सुषुप्ति में सारा संसार मेरे अन्दर स्थित या समाहित हो गया हैं, लीन हो गया हैं। उसे सारा जगत अपना वैभव, खेल, लीला या नाटक के समान लगता हैं तथा वह सदा अपनी स्वरूप स्थिति में रहता हैं।

अब प्रबुद्ध की स्थिति के बारे में कहते हैं कि प्रबुद्ध स्वप्न को जानता हैं। स्वप्न में मेरे अलावा कोई नहीं था, स्वप्न मेरा ही वैभव था। सुषुप्ति में सारा संसार मेरे अन्दर स्थित या समाहित हो गया हैं। उसे सारा जगत अपना वैभव, खेल, लीला या नाटक के समान लगता हैं तथा वह सदा अपनी स्वरूप स्थिति में रहता हैं।

अब प्रबुद्ध की स्थिति के बारे में कहते हैं कि प्रबुद्ध स्वप्न को जानता हैं स्वप्न में मेरे अलावा कोई नहीं था, स्वप्न मेरा ही वैभव था। सुषुप्ति को भी वह स्वरूप स्थिति ही जानता हैं परन्तु जाग्रत अवस्था में भी मेरा ही वैभव या लीला हैं यह नहीं जानता हैं। वह उपदेश का अधिकारी हैं।

वास्तव में जाग्रत अवस्था आपके ही संकल्प के परिणाम स्वरूप बनी हैं। वर्तमान में आपकी जो भी स्थिति हैं वह आपके ही संकल्प का परिणाम हैं। आपके विचार के परिणामस्वरूप आज का सारा जगत आपके सामने हैं।

जैसे-जैसे लोग, व्यवहार, स्थिति, परिस्थिति, यश, प्रसिद्धि, धन, सम्पदा आदि के बारे में आप सोचते थे वैसा ही जगत आपके सामने हैं।

तो इस श्लोक में हमनें यह जाना कि जो ज्ञानी हैं वह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं में अपने स्वरूप में स्थित रहता हुआ, अपना ही वैभव या ऐश्वर्य मानता हैं जानता हैं तथा जिज्ञासु या (.....) स्वप्न को सुषुप्ति को तो अपना वैभव जानता हैं परन्तु जाग्रत को अपना वैभव करके नहीं अनुभव कर पाता हैं।

एक छोटा सा विश्लेषण कर बात को यही समाप्त कर दूसरा प्रकरण लेंगे, एक बात समझे कि मान लो कोई सपना देख रहा हैं, कोई सेठ हैं, धनी है, अब मान लो कि सपने में वह अपने आपको भिखारी के रूप में देख रहा हैं। खाना खाकर सोया था परन्तु सपने में भूख-प्यास का अनुभव कर रहा हैं, सपने से उठकर जब वह जाग्रत अवस्था में आता है तो पता चलता है कि सपने की सारी समस्या व्यर्थ थी, वास्तव में सपने में कोई समस्या नहीं थी, वह तो खा-पीकर आराम से पलंग पर सोया था।

ठीक इसी प्रकार जब आप स्वरूप में जग जाएँगे जब जाग्रत की सारी समस्या समाप्त हो जाएगी। तब आपको पता चलेगा कि वास्तव में भी जाग्रत में भी कोई समस्या है ही नहीं। अस्तु

ज्ञानज्ञेयस्वरूपिण्या शक्त्या परमया युतः।

पदद्वये विभुर्भाति तदन्यत्र तु चिन्मयः।।१८।।

अभी पिछले श्लोक में यह बताया कि सुप्रबुद्ध, जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में स्वरूप में ही स्थित रहता है तथा प्रबुद्ध स्वप्न व सुषुप्ति के बारे में यह जानता है कि दोनों में मेरे अतिरिक्त कोई नहीं था, मेरा ही वैभव है परन्तु वह जाग्रत अवस्था में भी मैं ही हूँ यह नहीं जानता है तथा इसे अपना ही वैभव नहीं समझता है।

अब आगे कहते हैं कि वह जो अपना स्वरूप है, ऐश्वर्य है वह किस प्रकार दिखता है। तो कहते हैं कि परम शक्ति से युक्त होकर वह जाग्रत व स्वप्न में ज्ञान-ज्ञेय के रूप में दिखता है तथा सुषुप्ति व तुरीय में चिन्मात्र रूप में रहता है।

आइए विषय को धीरे-धीरे समझने का प्रयास करें। अपने जानते हैं कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय ये चार अवस्था होती है। जाग्रत अवस्था में हम जगते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, खाते हैं, पीते हैं, पढ़ते हैं, लिखते हैं, हँसते हैं, आते हैं, जाते हैं, कार्य करते हैं। इन्द्रियों के माध्यम से कार्य करते हैं। स्वप्न अवस्था में जब हम नींद में रहते हैं तथा मन में जो दृश्य या चित्र चलता रहता है उसे देखते हैं। सुषुप्ति वह अवस्था है जब हम नींद में हों तथा मन में कोई विचार न हो, दृश्य न हो तो कहते हैं कि सुषुप्ति की दशा है, स्थिति है। तुरीय वह अवस्था है कि जिसमें हम जगे हों तथा मन में कोई विचार भी न हो। इस प्रकार से हम जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति तथा तुरीय के बारे में जानते हैं।

अब इस कारिका में विचार करते हैं कि जाग्रत व स्वप्न को एक कोटि या श्रेणी में रखा। तथा सुषुप्ति व तुरीय को दूसरी कोटि या श्रेणी में रखा। तो कहते हैं कि जाग्रत व स्वप्न में परमशक्ति से युक्त होकर स्पन्द कैसे दिखाई दे रहा है, अपना वैभव कैसे दिखाई दे रहा है ज्ञान व ज्ञेय रूप में। दोनों में ज्ञान व ज्ञेय रूप में दिखाई दे रहा है। एक ओर वस्तु है तथा उसका ज्ञान भी हो रहा है। वस्तु है ज्ञेय, तथा दिखाई दे रही है यह है ज्ञान। तो जाग्रत व स्वप्न में अपना ऐश्वर्य ज्ञान व ज्ञेय रूप में दिखाई दे रहा है।

जाग्रत अवस्था में वस्तु अपने से पृथक या अलग दिखाई दे रही है तथा ज्ञान अपने भीतर दिखाई दे रहा है। जाग्रत अवस्था

सुख-दुःख आदि ज्ञेय अन्दर हैं तथा उसका भी ज्ञान हो रहा है। तो जाग्रत अवस्था में ज्ञेय बाहर भी है, अन्दर भी है तथा उसका ज्ञान भी हो रहा है। इतना स्पष्ट है। भई, जाग्रत अवस्था में क्या हो रहा है, भान ही तो हो रहा है, वस्तु का भान या ज्ञान तथा सुख दुःख आदि भाव का ज्ञान, सारा ज्ञान ही तो हो रहा है। ज्ञेय वस्तु के रूप में बाहर भी हो सकता है, भाव के रूप में अन्दर भी हो सकता है।

अब देखो स्वप्न में क्या हो रहा है। स्वप्न में भी ज्ञान ही हो रहा है, वस्तु है ज्ञेय तथा उसका ज्ञान हो रहा है परन्तु एक अन्तर है जाग्रत की अपेक्षा से जाग्रत में वस्तु है बाहर, स्वप्न में वस्तु अपने ही अन्दर है, बुद्धि ही तदाकार को प्राप्त हो रही है, बुद्धि ही विषय बनकर दिख रही है। सुख दुःख आदि अनुभव भी हो रहा है। वह भी अन्दर ही हो रहा है, तो स्वप्न में ज्ञेय भी अन्दर ही है। इतना स्पष्ट है तो आगे बढ़े।

जाग्रत व स्वप्न में एक अन्तर और भी है। जाग्रत है स्थिर, जैसा मकान, दुकान, रोड़, लोग आज देखे वैसे ही वह कल भी दिखाई दे रहे हैं, यह है स्थिर। परन्तु स्वप्न में ऐसा नहीं होता, जो एक दिन सपने में दिखा वह जरूरी नहीं है कि दूसरे समय स्वप्न में वैसा ही दिखे। इस विषय को किसी और समय देखेंगे। तब शायद यह भी चिन्तन करें कि हमें सपना आखिर दिखता क्यों है। भगवान ने आखिर सपना बनाया क्यों, क्या बगैर सपना बनाए काम नहीं चलता, उस समय यह विचार करेंगे कि जैसे सपने से जागने पर सपने का मिथ्यात्व सिद्ध होता है, यह मालूम हो जाता है कि सपना झूठा था, एक खेल था, उसी प्रकार जब हम स्वरूप में जग जाएँगें, तब इस जगत (जाग्रत) का मिथ्यात्व सिद्ध हो जाएगा, यह सपने के समान झूठा हो जाएगा, खेल लगेगा, अपना ही वैभव करके लगेगा (लगने लगेगा), इसका विचार किसी अन्य समय करेंगे। अस्तु

हमने देखा कि वह वैभव जाग्रत व स्वप्न में ज्ञान-ज्ञेय के रूप में दिख रहा है, अब दूसरी कोटि की बात करते हैं कि सुषुप्ति व तुरीय में क्या स्थिति है तो कहते हैं कि सुषुप्ति व तुरीय में व ज्ञान-ज्ञेय रूप में नहीं है वह चिन्मय रूप में है।

जैसा कि हम जानते हैं कि सुषुप्ति वह अवस्था है जिसमें से जगने के बाद हम यह कहते हैं कि सुखपूर्वक सोया, कुछ नहीं जाना, यह अनुभूति बनती है।

तथा तुरीय अर्थात समाधि में भी यह स्थिति बनती है कि मैं हूँ। पूर्ण अहंता है, विशिष्ट अहं लीन है। पूर्ण अहं में विशिष्ट अहं लीन रहता है। सत्ता में लीन रहता है।

सुषुप्ति में कारण में लीन रहता है, इसलिए यह बोध रहता है कि मैं सुखपूर्वक सोया कुछ नहीं जाना, ईश्वर भाव में लीन रहता है। इसलिए सुषुप्ति में सबकी अनुभूति एक समान होती है। जाग्रत तथा स्वप्न का सबका अनुभव भिन्न भिन्न या अलग-अलग होता है या रहता है क्योंकि इसमें मन, बुद्धि, अहंकार आदि रहता है, तथा इसी के अनुसार विश्व या जगत दिखता है। परन्तु सुषुप्ति में ये सब कारण में लीन रहते हैं। इसलिए सुषुप्ति में सबकी अनुभूति एक समान होती है। सुखपूर्वक सोया कुछ नहीं जाना।

समाधि में सत्ता में लीन रहता है, पूर्ण अहं की स्थिति है। उस समय विशिष्टता सत्ता में लीन रहती है। उस समय इस शरीर आदि का बोध या भान नहीं रहता है, विशिष्टता नहीं रहती है। उस समय वह समुद्र रूप का भान रहता है लहर की विशिष्टता नहीं रहती, प्रत्येक लहर ही है। उस समय चिन्मात्र रूप ही रहता है।

तो कहा कि वह शक्ति जाग्रत व स्वप्न में ज्ञान-ज्ञेय रूप में तथा सुषुप्ति व समाधि में चिन्मात्र रूप में होती है।

अब आगे कि कारिका में यह बताएँगे कि स्वरूप पर जो खेल चल रहा है, पर्दे पर जो भी दृश्य ज्ञान ज्ञेय रूप में दिख रहा है वह खेल है। परन्तु जो पर्दे को भूल कर ज्ञेय को देखने में लगा कि फँसा। यह जो तीन गुणों की धारा चल रही है, सत्व, रज व तम की वह समुद्र रूपी सत्ता को लेकर लहर के समान है, जो लहर को देखने लगा और समुद्र रूप को भूल गया बस वह फँस गया, अब जैसी लहर उठी, उसके साथ में उठने, और लहर गिरी तो उसके साथ गिरने लगा। सुख की लहर उठी, तो अपने आप को सुखी, दुःख की लहर उठी तो अपने आप को दुःखी मानने लगा। वैसा वैसा (वैसा ही) अनुभव करने लगा, खेल को सच मानने लगा तथा सुखी दुःखी होने लगा। जबकि वास्तव में ये सारी लहरें समुद्र रूप ही हैं। समुद्र से ही सत्ता पा रही है, समुद्र के अस्तित्व पर ही टिकी हैं। सुख दुःख रूप सारी लहर आपके स्वरूप या आप से ही सत्ता पा रही हैं, आपके अस्तित्व पर ही टिकी है, आपके अतिरिक्त कुछ है नहीं, परन्तु जब आप अपना स्वरूप भूलकर सुख दुःख रूपी लहर को ही जानते हैं तो वह लहरें नचाती हैं। इसे अगली कारिका में बताया है।अस्तु

कारण में दो भाग-उपाधि भाग (अविद्या-माया) दूसरा-स्वरूप भाव

बुद्धि को लेकर एक अनुभूति नहीं हो सकती है।

सूर्य का प्रकाश-सामान्य- प्रकाश-प्रतिफलन से विशिष्ट प्रकाश बना

सत्ता रूप-पर्दा रूप-सभी चित्रों के अधिष्ठान के रूप में।

दृष्टान्त-घड़े का सूर्य-प्रतिफलन की खोज में-सूर्य रूपता-तब सभी घड़ों में वही है। अपना वैभव दिखेगा।

व्यवहार-तो फिर नाटक के पात्र के समान है, स्त्री या भिखारी का रोल करना है।

जाग्रत व स्वप्न में ज्ञान-ज्ञेय में शक्तिरूप है, सामान्य व्याप्त है।

सुषुप्ति व तुरीय में चिन्मय रूप है। अपने से भिन्न किसी की अनुभूति नहीं है।

गुणादिस्पन्दनिःष्यन्दाः सामान्यस्पन्दसंश्रयात्।

लब्धात्मलाभाः सततं स्युर्ज्ञस्यापरिपन्थिनः।।१९।।

३९.००-१४

गुणा आदि स्पन्द की जो धारा चल रही है सत्व, रज तम। मुमुक्षु का परिशीलन अन्दर, संसारी की खोज बाहर। जो अन्दर परिशीलन होता है तो क्या देखता है, गुण, सुख दुःख का प्रभाव, सत्व, रज, तम का प्रभाव चल रहा है। जो सामान्य स्पन्द है, जो विशेष स्पन्द का आधार है। योगी (सुप्रबुद्ध) जो है अपने सामान्य स्पन्द का आधार ले लेता है। वहाँ केन्द्रित हो जाता है। इससे जानता है कि गुणादि स्पन्द, सामान्य स्पन्द के आश्रित, उसीमें आत्म लाभ प्राप्त कर रहे हैं, उसी से जी रहे है। सारी वृत्तियाँ आप से जी रही है। आपसे सत्ता व लाभ प्राप्त कर रहीं है। परन्तु मालूम उल्टा हो रहा है। इनमें साथ मिलकर विशिष्ट बन गए तो लगता है ये हमें जिला रही हैं। निरन्तर कोई भी ऐसा क्षण नहीं है जब गुणादि स्पन्द, सामान्य स्पन्द का लाभ किए बिना हों। जल को छोड़कर तरंग कभी भी नहीं है। वैसे ही स्वभाव भूत विमर्श से गुणों की नदी को आत्म लाभ हो रहा है। क्योंकि वह सामान्य स्पन्द का आश्रय लिया है, जल को कोई भी तरंग बाधा नहीं पहुँचा सकती है। सामान्य स्पन्द का आधार लेकर ही उसको आत्म लाभ प्राप्त हुआ है। जो ज्ञ जो अपने स्वभाव में रहता है उसको बाधक नहीं है।

गुण-सत्व, रज तम का प्रवाह सुख-दुःख का प्रभाव

पर्दे को कोई भी दृश्य बाधा नहीं

दर्पण को कोई चित्र बाधा नहीं।

गुरु का व्यवहार दिखता है ८.५१ पर है

प्रज्ञामान्दि के लिए सेवा उपाय

सारा विशिष्ट ज्ञान, सामान्य ज्ञान पर आश्रित है।

अप्रबुद्धधियस्त्वेते स्वस्थितिस्थगनोद्यताः।

पातयन्ति दुरुत्तारे घोरे संसारवर्त्मनि।।२०।।

अप्रबुद्धि को घोर संसार मार्ग में ले जाकर गिरा देता है। कैसे ? स्वस्थिति को स्थगन करके। ये गुण स्वस्थिति का स्थगन करते हैं। वो विद्यमान अपना ऐश्वर्य है तत्वग्राह्य। अपना ऐश्वर्य है, एक उपाधि में केन्द्रित हो जाने से अपना ऐश्वर्य को नहीं जानता। ये गुण उसको स्वभाव को तिरोहित कर देते हैं।

ऐते गुणा ये जो गुण हैं ये दुरुत्तारे घोरे संसारवर्त्मनि, अप्रबुद्धि बुद्धि वाले को घोर संसार मार्ग में गिरा देते हैं, जैसे धारा व्यक्ति को कहीं ले जाकर कहीं गिरा देती हैं, भंवर के समान उसमें गिर जाता है, फिर वह भँवर उसमें ही घुमाती रहती है, निकल नहीं पाता है। अपने आप को शरीर के रूप में देखना, मन के रूप में देखना यही भंवर है, प्रयास बहुत करता है, तैरने वाला भी बहुत प्रयास करता है। शास्त्र सुनकर हाथपैर भी बहुत मारता है। यही है पातयन्ति दुरत्तारे घोर संसार, गुण के रूप में ही अपने को देखता है, अपने को शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप में नहीं देखता है।

खींचना अर्थात् अहंता कही हो जाना, छोटे से तादात्म हो गया छोटे हो गए।

चेतना घन है, उसमें बाहर भीतर, छोटा-बड़ा कुछ नहीं होता, घड़े में छोटा, दर्पण ठोस है पर सारा ब्रह्माण्ड दिख रहा है। यही विशेषता है एक रूप होकर भी अनेक रूप में प्रतिभासित हो रहा है। जीव भाव उपाधि के कारण है।

चन्दन की लकड़ी पर कीचड़।

पर्दे को आवृत करके चित्र दिख रहा है। सुख-दुःख आदि

अपने आप को शरीर, मन आदि के रूप में देखता है यही भंवर है।

अतः सततमुद्युक्तः स्पन्दतत्त्वविविक्तये।

जाग्रदेव निजं भावं न चिरेणाधिगच्छति।।२१।।

३४-१६

जो साधक लगातार स्पन्द तत्व के अनुसंधान में लगा रहता है,उद्यम में लगा रहता है। वह जाग्रत में तुरन्त (अचिरेणकाल) स्वरूप में स्थित हो जाता है।

इसलिए प्रयत्न साधकः , उद्यमो भैरवः

कहते है कि प्रयत्न ही साधक है, भैरवः भाव ही उद्यम है, भंवर से निकलने के लिए जोर लगाए। उदाहरण पशु उठना चाहता है,

जो उठना चाहते हैं, उसको शास्त्र व गुरु सहयोग करते हैं।

जो उठना ही नहीं चाहे, उसके लिए क्या करेंगे। जिसे अभी मोह है, पदार्थ में रस है।

जो मुमुक्षु है, वह जोर लगाता है, वह भंवर को काट पाता है। उद्यम भैरव सीमित अहंता से उद्यत, उछल पड़ा तो महादेव हो जाता है भैरव बन जाता है। पूर्णाहंता कौलितं

पर्दा रूप हो गया, समुद्र रूप हो गया।

प्रतिक्षण सावधान रहने का नाम ध्यान है। तीव्र वैराग्य उत्पन्न- मौका देखता है। क्षण सावधान, जेबकट,

उपाधि को स्वभाव से पृथक करने के लिए निरन्तर सावधान।

भूमि चयन का उदाहरण

सावधान रहे तो पहचान लेता है। बड़ा आश्चर्य है कि पर्दा नहीं दिख रहा है, समुद्र नहीं दिख रहा है। तब जब वैभव रूप हो जाता है, जो सतत उद्योग में लगा रहता है। तड़पन, जगने की इच्छा प्रबल हो तो कोई नहीं सुला सकता है। साधु भी सोचता है कि पैसे के बिना कार्य नहीं चलता।

शरीर के पोषण में लगा है, और आत्मा का दर्शन करना चाहता है, वह वैसा ही है जैसे कोई नदी पार करने के लिए मगर का सहारा ले ले, वह बीच में ही खा जाएगा। भारत भ्रमण करो।

अचिरेण - समय जो लगता है वह प्रतिबन्ध के कारण लगता है।

अतः सतत् उद्यत-

....

श्लोक २१

अतः सततमुद्युक्तः स्पन्दत्त्वविक्तये।

जाग्रदेव निजं भावं न चिरेणाधिगच्छति।।२१।।

पिछली कारिका या श्लोक में हम देख चुके हैं कि अप्रबुद्ध या अल्पज्ञानी ज्ञानी को शब्द आदि विषयों में (शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श) बैठी हुई शक्तियाँ किस प्रकार नचाती हैं, संसार सागर के भंवर में डालती हैं।

अब इस भंवर से निकलना चाहते हैं, उसके लिए कहते हैं कि जो सदा इस प्रयत्न में लगा रहता हैं वह जाग्रत अवस्था में ही

बहुत कम समय में ही सफलता प्राप्त कर लेता हैं अर्थात् भंवर से निकलने का मार्ग जान लेता हैं।

पहले इस विश्वास को पक्का करने के लिए कि भंवर से निकलने का मार्ग जाना जा सकता हैं, एक-दो उदाहरण देखेंगे।

आधुनिक विज्ञान के विद्यार्थियों ने न्यूटन नामक वैज्ञानिक के बारे में सुना हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार ऐसा मानते हैं कि गुरुत्वाकर्षण का आधुनिक सिद्धान्त उन्होंने ढूँढा। कैसे? पेड़ से सेबफल गिरा, उन्होंने विचार किया, कि यह सेब नीचे ही क्यों गिरा, फिर विश्लेषण करते-करते सिद्धान्त खोज निकाला। तो देखा उनके मस्तिष्क में मन में सदैव यह विचार चलता रहा तथा उन्होंने तत्व को जान लिया।

चलों एक उदाहरण ओर लेते हैं, कोई पॉकेटमार अर्थात् जेबकतरा हैं, पहले तो वह भॉपता हैं कि कौन आसामी हैं (पैसे वाला हैं) फिर वह यह पता लगाता हैं कि उसके पास कितना माल हैं (कितना पैसा हैं) किस जेब या पॉकेट में कितना रखा हैं। फिर वह मौके कि तलाश में रहता हैं। जैसे ही मौका मिलता हैं या दॉव लगता हैं वह आसामी की जेब में से पैसा निकाल लेता हैं। तो देखों वह अपने कर्म में सदैव जाग्रत या सचेत रहता हैं, तथा सदा प्रयत्नशील भी रहता हैं। मौका मिलते ही सफलता प्राप्त कर लेता हैं।

एक अन्य उदाहरण लें– कोई युवक हैं, वह घर छोड़ना चाहता हैं, साधु बनना चाहता हैं। उसके घर वालो को यह बात पता हैं कि युवक घर छोड़ना चाहता हैं, तो घर वाले उस युवक पर निगरानी करते रहते हैं। वह युवक भी घर छोड़ने के लिए प्रयत्नशील हैं तथा अवसर की ताक में रहता हैं जैसे ही मौका मिलता हैं वह घर से भाग जाता हैं या घर छोड़ देता हैं या घर को त्याग देता हैं।

इसी प्रकार कहते हैं कि जो इस संसार-सागर रूपी भंवर से निकलना चाहता हैं तथा सदैव प्रयत्नशील रहता हैं। वह जाग्रत अवस्था में ही बहुत जल्द ही उसे प्राप्त कर लेता हैं।

इसका उपाय गुरु मुख से जानना चाहिए।

हम पिछली कारिका में दो-तीन उपाय देख चुके हैं।

१. मंत्र चिन्तन।

२. अन्य चिन्तन या विचार आदि-आदि।

अगली दो कारिकाओं या श्लोक में उपायों की चर्चा हैं।

अप्रवुद्धाधयस्वेते स्वस्थितिस्थगनोद्यताः।

जो अप्रबुद्ध हैं उसके स्वरूप को ढाँकने में ये शक्तियाँ सदैव लगी रहती हैं। चित्र सदा परदे को ढाँकने में लगा रहता हैं। यह बात हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि कोई भी चित्र पर्दे को ढँक नहीं सकता हैं क्योंकि जब पर्दा ही ढक जायेगा तो चित्र कैसे दिखेगा अर्थात पर्दा तो हमेशा ही रहता हैं, परन्तु जो अप्रबुद्ध हैं, उसकी दृष्टि पर्दे की बजाय चित्र पर केन्द्रित रहती हैं, तो जब भी हम कहते हैं कि वह पर्दा है तो वह चित्र को ही देखता हैं तथा चित्र को ही पर्दा मानता हैं या समझता हैं। इसी प्रकार जब कोई अँगुठी या आभूषण आदि को देखता हैं तो वह आकृति विशेष पर केन्द्रित रहता हैं।

जैसे मान लो कोई कमरा हैं तथा उस कमरे में कोई घड़ा या मिट्टी का खिलौना रखा हैं। हम यदि किसी को कहें कि जाओ उस कमरे में से मिट्टी ले आओ, तो सामान्य रूप से वह कह सकता हैं कि उस कमरे में घड़ा व खिलौनारखा हैं वहाँ मिट्टी नहीं रखी हैं क्योंकि उसकी नजर आकृति विशेष पर केन्द्रित हैं। स्पष्ट हैं।

.....

कहने का तात्पर्य यह हैं कि साधारण रूप से अपनी दृष्टि दृश्य या चित्र या आकृति पर केन्द्रित रहती हैं। पर्दा या पदार्थ पर नहीं रहती हैं।

ठीक इसी प्रकार मन में कोई वृत्ति (विचार) उठी। मानो सुख का विचार आया या किसी ने कोई बात हमारे अनुकूल की या हमारी प्रशंसा की तो हम प्रशंसा के सुख में ही डूब गए। यही हैं कि कैसे शब्द उठे (सुने), कैसे उन शब्दों को मन ने ग्रहण किया, कैसे मन को अच्छा लगा, कैसे हममें सुखाकार वृत्ति का रूप लिया, कैसे हम अच्छा महसूस करने लगे?

ये सारी अवस्थाएँ हैं चित्र के समान तथा हम दृष्टा या साक्षी हैं।

एक और उदाहरण के द्वारा हम विशेष रूप से समझें, जैसे कोई शिक्षक हैं, प्रेक्टीकल एक्ज़ाम का समय हैं तथा कोई छात्र बड़ा सा गुलदस्ता फूलों से भरा हुआ लाए, तो यदि शिक्षक जानता हैं यह गुलदस्ता एक्ज़ाम में अच्छे नम्बर के लिए लाया हैं तो

शायद उसे उतनी खुशी या आनन्द न आ पाए। तो देखो क्रिया के पीछे भाव समझ में आ जाए, तो क्रिया आनन्द नहीं देती हैं। इसी प्रकार कोई स्वार्थ वश प्रशंसा आदि करे तो व्यक्ति उतना प्रभावित नहीं होगा।

यही अभ्यास बढ़ाते-बढ़ाते एक अवस्था ऐसी भी हो जाती हैं जिसमें न तो प्रशंसा का स्पर्श होता हैं न ही अपमान का।

तो इस श्लोक या कारिका में यह बताया हैं कि अप्रबुद्ध या कम जानने वाले (अल्पज्ञानी) में क्या प्रक्रिया बनती हैं कि वह प्रत्येक चित्र को ही देखता हैं, जैसा चित्र आया वैसा अपने को मानकर व्यवहार करना हैं। किसी ने प्रशंसा कर दी तो खूब उछलने लग गया। किसी ने गाली बक दी तो झगड़ा करने लगा। हर बार शब्दों में बैठी हुई शक्ति, जैसा चाह रही हैं वैसा नचा रही हैं।

इसी बात को कारिका में कहा हैं कि अल्पज्ञानी को शब्द आदि के रूप में बैठी शक्ति नचा रही हैं, तथा इस संसार सागर के भंवर में गिरा देती हैं।

हमने एक उदाहरण प्रशंसा या अपमान के शब्द के रूप में देखा कि किस प्रकार से प्रशंसा के शब्दों का विश्लेषण करने या स्वीकार करने से हमारे अन्दर एक प्रकार के गर्व का भाव बनता हैं तथा संस्कार पड़ते हैं, इसी प्रकार अपमान के शब्द का प्रभाव, संस्कार व प्रतिक्रिया होती हैं। यदि अभ्यास के द्वारा हम शब्द से ऊपर उठ जाएँ (कैसे ? यह गुरुपदेश से जानना या समझना चाहिए।) (जैसे शब्द के पीछे के भाव को समझें पहली सीढ़ी, दूसरी सीढ़ी में शब्द को सुनें, उसके उतार-चढ़ाव, भाव-भंगिमा, शब्दों का चयन, बोलने का तरिका आदि अर्थात् शब्द, अर्थ व .....के बजाए अन्य ओर मन को फोकस करें। तीसरी सीढ़ी में प्रशंसा या अपमान के शब्द के समय मन को कहीं ओर केन्द्रित कर दें तो शब्द सुनाई देते हुए भी अपना प्रभाव नहीं डाल पाएँगा।

अन्य उपाय के रूप में –प्रशंसा के समय, प्रशंसा के शब्द ईश्वर, गुरु या इष्टदेव को अर्पित कर दें कि सब ईश्वर की कृपा हैं। इसी प्रकार मान-अपमान दोनों ही समर्पित कर दें।

अन्य उपाय–मान अपमान के मन्त्र जप या अन्य चिन्तन करें। ऐसे अनेकानेक उपाय हैं जिनसे साधक को शब्द रूप में बैठी हुई शक्ति प्रभावित नहीं कर सकती।

इसी प्रकार रूप उपस्थित होने पर संस्कार के कारण राग-द्वेष उत्पन्न होता हैं। मन के अनुकूल चित्र, आकृति, दृश्य आने पर राग, कामना, इच्छा, आसक्ति आदि उत्पन्न होता हैं। मन के प्रतिकूल चित्र, आकृति, दृश्य आदि आने पर द्वेष (चित्र को हटाने की इच्छा आदि) उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार का प्रभाव गन्ध, स्पर्श तथा स्वाद के आने पर जानें।

इस प्रक्रियाँ को यदि आप समझना चाहें, तो हम कहेंगे कि चित्र (विषय) सामने आया, आँख (इन्द्रिय) से उसका सम्पर्क हुआ, जिस प्रकार संस्कार पहले से हमारे अन्दर था उसके अनुसार चित्र को देखने की इच्छा हुई, यदि चित्र में उसके प्रतिकूल हैं तो द्वेष हुआ। यदि अनुकूल, प्रतिकूल नहीं हैं तो उदासीन भाव रहा।

अब किसी तरह ऐसी विधि या कला विकसित हो जाए या आ जाए कि सामने चित्र (विषय) आए, इन्द्रिय से सम्पर्क भी हो परन्तु मन से उसका सम्पर्क संबंध न बनें, मन कहीं ओर लगा हों, तो विषय अपना प्रभाव नहीं डालेगा। ऐसी कला विकसित करना होगी।

वास्तव में ये है बड़ा सरल। कैसे जाने? जैसे मान लो कोई विरक्त हैं, साधु-सन्यासी हैं, उसे संसार में बिल्कुल रस नहीं हैं, वह ट्रेन या रेल या बस में कहीं जा रहा हैं। यात्रा में उसके पास दो लोग आपस में बात कर रहे हैं। यदि वो व्यक्ति शेयर मार्केट के संबंध में बात कर रहे हैं। कौन से शेयर का भाव बढ़ने घटने वाला हैं, किसको बेचकर या खरीदकर बहुत फायदा होने वाला हैं या सरकार की किस ..... से किस प्रकार का लाभ हो सकता हैं आदि-आदि। तो उस साधु या विरक्त को सुनाई देते हुए भी, कुछ सुनाई नहीं देगा अर्थात् समझ भी नहीं आएगा। राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होगा, संस्कार या प्रभाव भी नहीं होगा।

उसके विपरित पास में कोई अन्य व्यक्ति जो उस विषय से संबंधित, वार्तालाप का फायदा या लाभ ले सकता हैं।

इसी प्रकार शब्द होने पर वह शब्द अपना प्रभाव तभी डाल पाते हैं जब हम ग्रहण करने के इच्छुक हो। शब्द में बैठी शक्ति साधारण संसारी व्यक्ति को अपने जाल में फंसाकर संसार रूपी सागर के भंवर में गिरा देती हैं।

अब उस अवस्था को प्राप्त करने का उपाय बताते हैं-

अतिक्रुद्धः प्रहृष्टो वा किं करोमीति वा मृशन्।

धावन्वा यत्पदं गच्छेत्तत्र स्पन्दः प्रतिष्ठितः।।२२।।

२.००-१८

जब व्यक्ति अत्यधिक क्रुद्ध अवस्था में हो या बहुत प्रसन्न अवस्था में हो या जैसे कोई बाघ आदि में पीछे लगा हो तब दौड़ने वाला हो, इन अवस्थाओं से पहले एक स्थिति ऐसी होती है, जिसे कहते हैं कि वह स्पन्द में चला जाता है, इसे गुरु उपदेश से ग्रहण करना चाहिए। उस स्पन्द की अवस्था से वह बल प्राप्त करता है तथा उसके बाद वह क्रिया करता है। यदि दौड़ना हो तो दौड़ने का बल वह वहाँ से प्राप्त करता है।

हम सोचते हैं कि भय से हुआ, नहीं। भय से उस भूमिका में पहुँचते हैं। स्वभाव में आवेश आ जाता है। पहले स्वभाव में जाएगा, फिर आवेश लेकर आएगा। संकल्प व्यापक को लेकर हो जाता है। इसलिए असंभव सा कार्य भी हो जाता है। सामान्य में स्थित होकर ध्यान किया तो सर्वज्ञ हो गया।

कामाख्या का उदाहरण, सर्वज्ञता, कालातीत, किस शरीर के साथ मैं को जोड़ें?, सामान्य ज्ञान-सर्वज्ञता, सर्व कर्तृत्व बीज रूप में, बिजली में प्रकाश शक्तिस्वाभाविक है। बल्ब में अभिव्यक्ति, कमजोर माध्यम में कमजोर, इसलिए शक्ति की कमी नहीं, केवल प्राकट्य नहीं है, जब देश पराधीन था, तब भी शक्ति थी प्राकट्य नहीं था।आज ही मुक्त होने की शक्ति है। जो चित्त संकल्प होना चाहिए है वह नहीं है। जब पहचान हो जाएगी, तो शिव रूप हो जाएगा। इसी प्रकार प्राण-अपान के मध्य, संकल्प के बीच। बीच को लक्षित करों, वह बीच सामान्य है। चित्र में खाली जगह गाय की आकृति है।.....

व्याख्या-जहाँ विशिष्ट संकल्प अस्त हुआ, वही सामान्य है। जहाँ एक लहर विलीन हो जहाँ से दूसरी लहर उद्भूत होती है, वह सामान्य है। इसका प्रेक्टीकल गुरुपदेश से समझना चाहिए। इसे ग्रन्थ में नहीं लिखा जा सकता है।

दीर्घ प्रणव प्रक्रिया-मन के दोष के शमन के लिए।

शरीर से दोष-उपवास (कायदण्ड)

वाणी से दोष-२४ घण्टे मौन रहकर जप करो।

मन के लिए-प्राणायाम-दीर्घ प्रणव

घण्टा मारकर चित्त एकाग्र करें। जितनी सूक्ष्म उतनी व्यापक।

कहीं इतनी श्रद्धा है, कि अहंता पूरी समर्पित है, तो सभी वृत्ति शान्त हो जाती है, क्योंकि आपका अपना कोई संकल्प नहीं रहा। इस प्रकार के समर्पण से व्यक्ति स्पन्द में पहुँच जाता है। ईश्वर शरणागति या कहीं भी सचाई से समर्पण। अष्टावक्र ने कहा-ज्ञान तो एक क्षण में हो जाए। क्योंकि स्वरूप भूत है।

भावातीत १४.५०-१७

संकल्प के मध्य में आप हैं। एक संकल्प समाप्त हुआ तथा दूसरा संकल्प उठा तो संकल्प के मध्य में तो आप हैं ही। वही नित्य है।

एक संकल्प से दूसरे संकल्प के मध्य आप है। १.००-१८.०० वही नित्य है। बाकी सब आने जाने वाला है। वह क्षणिक होता है कि आप लक्षित नही कर पाते हैं।

फिर भी, योगी मैं जोवहाँ हूँ ही। तो एक प्रतिभिज्ञा हो जाती है, पहचान हो जाता है। आगे यह श्लोक में बताया है-

अतिक्रुद्धः प्रहृष्टो वा किं करोमीति वा मृशन्।

धावन्वा यत्पदं गच्छेत्तत्र स्पन्दः प्रतिष्ठितः।।२२।।

२.००-१८

जब व्यक्ति अत्यधिक क्रुद्ध अवस्था में हो या बहुत प्रसन्न अवस्था में हो या जब कोई बाघ आदि पीछे लगा हो तब दौड़ने वाला हो, इन अवस्थाओं से पहले एक स्थिति ऐसी होती है, जिसे कहते हैं कि वह स्पन्द में चला जाता है, इसे गुरु उपदेश से ग्रहण करना चाहिए। उस स्पन्द की अवस्था से वह बल प्राप्त करता है तथा उसके बाद वह क्रिया करता है। यदि दौड़ना हो तो दौड़ने का बल वह वहाँ से प्राप्त करता है।

कभी कभी व्यक्ति को एकाएक अत्यधिक क्रोध हो जाता है। मानो कि तीव्रतर ऐसी चीज सामने आ गई कि व्यक्ति सामने आए तो हम इसको मार ही डालें ऐसा रोष है। उदाहरण व्यक्ति ने गाँव के लोगों को अग्नि लगाकर मार डाला तो उस व्यक्ति के प्रति आपको कितना रोष होगा।

पुजारी का कहना था कि प्रेष्यकरणी विद्या है। दूसरा हमको नहीं देखेगा, परिक्रमा वासी को भील लूटते हैं। उसके मन में रोज-रोज ऐसा देखने से ऐसी भावना बनी। एक ऐसी भूमिका में पहुँच जाती है, क्रोध तो बाद में आएगा, पहले चित्त की भूमिका स्तब्ध के समान होती है, जहाँ कुछ भी भान नहीं होता, स्पन्द में पहुँच जाते है, वहाँ मूल से बल लेकर वह कार्य करता है तो बहुत बल होता है।

६.००-१८ मूल में जाकर जो संकल्प लेता है, उसमें बहुत अधिक तीव्रता होती है।

एक अत्यन्त प्रिय गायब होगया हो, बहुत वेदना हो,वह मिल जाएतोआपका चित्त सब कुछ छोड़कर स्पन्द में चला जाता है, उसके बाद बहुत बड़ा हर्ष उत्पन्न होता है।

जब आप बहुत क्रोधित हों या बहुत प्रसन्न हों या किंकर्त्तव्यविमूढ हों या जैसे आप चाँद पर जा रहे हों और इंजिन कार्य करना बन्द कर दे। उस समय स्पन्द में चले जाते हैं, किंकरोति ८.००-१८

अथवा जब आपके सामने बाघ आ जाए तब जब आप भागते हैं तो आपको शरीर का भान नहीं रहता है, बाघ का भी ध्यान नहीं रहता, तो स्वरूप में जाकर भागते हैं तो बहुत बल लेकर भागते हैं उस समय आप में बहुत बड़ा बल आता है, क्योंकि स्वरूप में जाकर बल प्राप्त करके आप आगे बढ़ते हैं, ऐसी स्थिति में जिस भूमिका में आपका चित्त चला जाता है वह स्वरूप स्थिति है। वह सवर्ज्ञता की भूमिका में चला जाता है। ऐसी स्थितियों में आपका चित्त जिस भूमिका में चला जाता है, वह स्पन्द भूमिका है, सामान्य भूमिका है। व्यवहार में एक विशिष्ट दशा में चला जाता है परन्तु हमें पहचान नहीं है। ये स्वाभाविक है। बल ग्राह्यता का परिणाम भी आता है, परन्तु आप पहचान नहीं पाता । हम समझते हैं कि भय आदि के कारण हुआ। परन्तु उस समय भूमिका आती है। आवेश आदि में इधर का भूल कर आवेश में जाता है, उसे सीमित अहंता को लेकर नहीं कर सकता है। पहले स्वभाव में जाता है। पहले ० पॉवर का बल्व हटकर, १०० पॉवर का लग जाए।

संकल्प से असंभव का कार्य भी संभव होजाता है।

१४.०० सारे संकल्प सामान्य में ही हैं। उससे आत्म व्याप्ति हो जाती है। अधिकार में नहीं होती, संबंध हो जाता है। साधन करते करते ऐसी वृत्ति हो जाती है।

कामाख्या चला जाता है। १५.००-१८ फल व पानी लेकर चला जाता है। पूर्व जन्म केएक दिन का पूरा दृश्य दिखने लगा। अपना शरीर भी दिखाई दे रहा है। एक तख्त बिछा है। सफेद चादर पर एक व्यक्ति सफेद कपड़े है। बैठे हुए शरीर में अहंता बैठ गई। १८-१८ जन्म से अब तक का सारा ज्ञान अंधविश्वास का है। यह भी तुमने कहीं से सुन लिया है कि साधु लोग ठगते हैं यह भी अंधविश्वास है।

मूल स्वभाव में सब है, कोई निमित्त से कोई घटना सामने आ गई।

व्यक्ति साधन करते करते ऐसी भूमिका में चला जाता है कि सर्वज्ञता के समान हो जाता है। उसमें सर्वज्ञता व सर्वकर्तृत्व बीज रूप में है। जैसे बिजली में बीज रूप में है। विशेष रूप से बल्ब में प्रतीति होता है। कमजोर में कमजोर प्रगट बलवान में बलवान प्रगट होता है। इसलिए कहीं भी, शक्ति या ज्ञान की कमी नहीं है। प्राकट्य नहीं है। जैसे जब देश गुलाम थे तब भी स्वातन्त्र होने की शक्ति थी, पर प्रगट नहीं है। आज ही मुक्त होने की शक्ति है, जो संकल्प होना चाहिए वह नहीं है, कहीं न कहीं बुद्धि पकड़ कर बैठी है।

साधक को इस शक्ति की पहचान होना चाहिए।

आवेश आदि में क्या होता है कि वह अपने को भूलकर मूल में चला जाता है तो अत्यन्त बल को प्राप्त कर लेता है।

बल्व-विद्युत, शक्ति व ज्ञान की कमी नहीं है, केवल प्राकट्य नहीं है।

संकल्प नहीं है, नहीं तो मुक्ति में कहीं कोई बाधा नहीं है।

योग वाशिष्ठ में प्राण-अपान को लेकर,

१२ अंगुल बाहर गया, अपान होकर अन्दर आया, जब बाहर गया है अन्दर नहीं आया,

दो वृत्ति के मध्य या प्राण अपान के मध्य, उस समय अपने को

पहली व दूसरा वृत्ति के मध्य सामान्य स्थिति है।

बीच में खाली जगह में गाय की आकृति है। एक बार गाय दिख जाए तो केवल गाय ही दिखती है।

गाय उसमें नहीं है, परन्तु खाली जगह है।

गाय आधार तत्व का लक्षित होना। आधार लक्षित नहीं होता , विशिष्ट लक्षित होता है। तो दोनों प्रकार से प्राण शक्ति (प्राण) को लेकर कहीं ज्ञान शक्ति को लेकर (वृत्ति),

जहाँ विशिष्ट संकल्प अस्त होता है वहीं पर सामान्य होता है। जहाँ पर लहर लीन हो रही है, जहाँ से उठती है वहीं समुद्र है।

वहाँ तो हो भी जाता है, पर यहाँ नहीं हो पाता है।

इसका प्रेक्टीकल गुरोपदेश से करे इसको ग्रन्थ में नहीं लिखा जा सकता है। जिसने प्रेक्टीकल किया हो वह करा सकता है। ९.२९-१९

मन के दोष के शमन के लिए दीर्घ प्रणव परम्परा है। मनोदण्ड के लिए दीर्घ प्रणव ।

शरीर के दोष के लिए उपवास (२४ घण्टे)१०.२२-१९

वाणी के दोष के लिए- मौन (२४ घण्टे) रहकर जप करों।

मन से अपराध हो तो प्राणायाम करो १ प्राणायाम, ३ प्राणायाम, ५ प्राणायाम (दीर्घ प्रणव का उच्चारण) दीर्घ ध्वनि के साथ मन लगेगा तो अन्त में जहाँ से स्पन्दन उठता है, वहाँ पहुँचेगा। जितनी सूक्ष्म ध्वनि होगी उतनी व्यापक होगी।

(१२.०९-१९)

उसी प्रकार ध्वनि से घण्टा , व्यापक उसके साथ मन जोड़ दो तो मन व्यापक हो जाएगा। सूक्ष्म होते होते व्यापक हो जाती है।

इसी प्रकार अन्य कई साधन हैं। गुरोपदेश से करना चाहिए।

एक और स्थिति है जिस स्थिति में ऐसी स्थिति बन जाती है।

कहीं इतनी श्रद्धा हो कि अहंता पूर्ण समर्पित होजाए तो बुद्धि स्वविश्रान्त हो जाती है। क्योंकि अब आपका अपना कोई संकल्प नहीं रहा। आप एक बार सचाई (सच्चाई) से इस प्रकार का समर्पण होता है तो व्यक्ति स्पन्द में चला जाता है। क्योंकि अब उसका कोई निमित्त नहीं रहा इसलिए वह स्पन्द तक पहुँच जाएगा। ईश्वर शरणागति में कहीं भी इस प्रकार का समर्पण हो जाए। क्योंकि मन समर्पित हो गया। एक बार अष्टावक्र (याज्ञवल्क) कहें कि जनक से कहा कि ज्ञान कितने काल के अभ्यास में हो जाए, ज्ञान तो एक क्षण में हो जाए, क्योंकि वह स्वरूप भूत है, तो ऐसा ज्ञान हमें करा दें। ज्ञान तो करा दे, परन्तु तब तो ऐसी स्थिति हो जाएगी तब दक्षिणा कैसे ?

यही ज्ञान है जहाँ गाली व प्रशंसा का स्पर्श न हो , उस अवस्था में रहो, अब इस राज्य का संचालन करों,

ऐसे समय में भी स्पन्द स्पष्ट होता है।

साधन-गुरु उपदेश से जानना चाहिए।

.....

कारिका-२२

अब आगे की कारिकाओं में स्वरूप को लाईनमत ????? करना बताते हैं-

कि वह जो स्वरूप या पर्दे या अधिष्ठान या सत्ता को कैसे पहचानना उसका आधार बताते हैं। (कहानी तुलसीदासजी, हनुमानजी तथा रामजी) क्योंकि जैसा हम देख चुके हैं कि स्वरूप नित्य हैं, सदा रहता हैं, सदा उपलब्ध हैं, उसके बगैर अन्य का अस्तित्व ही नहीं हैं। किसी भी चित्र का अस्तित्व पर्दे के बिना नहीं हैं, किसी भी लहर का अस्तित्व समुद्र या जल के बिना नहीं हैं। परन्तु

घोर आश्चर्य का विषय हैं कि पर्दा नहीं दिख रहा हैं, केवल चित्र दिख रहा हैं। लहर दिख रही हैं समुद्र नहीं दिख रहा हैं। आभूषण दिख रहा हैं, सोना नहीं दिख रहा हैं, आश्चर्य हैं।

अब इस कारिका में कहते हैं।

अतिकुद्धः प्रहृष्टो वा किं करोमिति वा मृशत्।

धावन् वा यत्पदं गच्छेत्तत्र स्पन्दः प्रतिष्ठितः।।२२।।

कि जब किसी कारण से आप अत्यधिक क्रोध व्यक्त करते हैं उससे क्षण भर पहले, जब कभी आपके सामने किंकर्त्तव्यविमूढ दशा आ जाए उस समय आप जंगल में जा रहे हों ओर एकाएक शेर आ जाए या सर्प आ जाए तब आप जो दौड़ते हैं उस से क्षण भर पहले उस समय आपका स्वरूप कहो, सत्ता कहो, स्पन्द तत्व एकदम स्पष्ट रूप से दिखता है, गुरु-उपदेश से उस अवस्था की अनुभूति करना चाहिए।

यहाँ विभिन्न दशाओं का वर्णन करते हुए बताते हैं कि प्रत्येक के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं, जब उस व्यक्ति में किंकर्त्तव्यविमुढ दशा आ जाती हैं, एक ऐसी स्थिति कुछ क्षण के लिए आती हैं कि अब क्या करें?

जैसे मान लो कि कोई विमान चालक हैं । अब अचानक आकाश में विमान उड़ाते समय किस क्षण सारे यन्त्र या उपकरण कार्य करना बन्द कर दें तो थोड़ी देर के लिए ऐसी दशा आती हैं, जिसमें विचार आना पूर्णरुप से बन्द हो जाते हैं। इसी प्रकार मान लो कोई वन अर्थात् जंगल से जा रहा हैं, और अचानक उसे साँप दिख जाए तो देखते से ही उसमें भय पैदा हुआ तथा वह सोचता हैं कि क्या करूँ। उसे तुरन्त कुछ नहीं सुझता। (रुकू, इसे मारुँ? या भाग जाऊँ?) कैसे भाँगू? इस समय कुछ क्षण के लिए वह स्तब्ध से हो जाता हैं। उसके पश्चात् वह अपने ही स्वरूप बहुत सारा बल या सामर्थ्य लेकर भागता हैं। फिर वह बाधा आदि कुछ नहीं देखता तथा ५-७-८-१० फीट ऊँची दीवार कूद जाता हैं जो वह सामान्य रूप से नहीं कूद सकता हैं। उसमें भय आदि के समय एक बार का आवेश आ जाता हैं। यह आवेश वह अपने मुल स्वरूप से लेता हैं। यदि साधक किंकर्त्तव्यविमूढ दशा में थोड़ा सावधान हो तो उस अवस्था को पहचान लेता हैं।

अब आप कह सकते हो कि भय के समय निर्णय लेकर क्रियान्वित करें (भागे) या स्पन्द में स्थित हो? तो कारिका कहती हैं कि केवल भय के समय ही वह स्थिति नहीं आती हैं वरन् जब कोई प्रिय व्यक्ति बहुत दिनों के बाद अचानक मिलता हैं तो भी यह स्थिति बनती हैं, वह भी तत्व या स्पन्द या सत्ता को पहचानने का अवसर होता हैं।

इसी प्रकार किसी निमित्त या कारण वशात् कोई व्यक्ति अत्यधिक क्रोधित हुआ तो उस क्रोध को अभिव्यक्त करने से पहले वह एक ऐसी दशा या अवस्था में जाता हैं। जहाँ वह बल लेकर क्रुद्ध होता हैं, यदि आप साधक हैं तो उस क्षण को आप लक्षित कर सकते हैं, देख सकते हैं, जान सकते हैं।

इसके अतिरिक्त आपके जीवन में अनेकानेक ऐसे अवसर आते हैं, जिसका वर्णन शास्त्रों में किया गया हैं। उसे गुरुपदेश से जानना चाहिए, क्योंकि जिसने अनुभव किया हैं वह अनुभव करा भी सकता हैं।

इनमें से एक स्थिति तब बनती हैं जब आपनी अहंता कहीं समर्पित हो जाए। किसी महापुरुष के चरणों में आपकी अगाध श्रद्धा हो तथा अपनी अहंता का पूर्ण समर्पण हो जाए।

ऐसा एक दृष्टान्त आता हैं कि एक बार अष्टावक्र राजा जनक के पास आए। राजा ने गुरुदेव से पूछा कि ब्रह्मज्ञानी होने में कितना समय लगता हैं। तो अष्टावक्र कहते हैं कि ब्रह्मज्ञान का क्या हैं वो तो एक पल में हो जाए।

जनक-तो आप करा दीजिए।

अष्टावक्र-ऐसा हें कि जब तुम ब्रह्मज्ञानी हो जाओगे तब हम तुमसे दक्षिणा नहीं ले सकते, तो हे राजन् दक्षिणा तुम पहले ही दे दो।

जनक-मेरा सारा राज्य आज से आपका, मैं आपको अपना राज्य दान करता हूँ।

अष्टावक्र-हे राजन् ये राज्य आपका कैसे हुआ, ये पहले तुम्हारे पिता कहते थे कि उनका हैं, उनसे पहले कोई ओर राजा था, वह कहता था कि वह राज्य उसका है, तो बताईए यह राज्य आपका कैसे हुआ?

जनक-मैं अपना पूरा शरीर आपको भेंट करता हूँ।

अष्टावक्र-हे राजन् इससे पहले पिछले जन्म में आप किसी दूसरी देह को अपनी कहते थे, अतः इस देह को आप अपनी कैसे कह सकते है?

जनक-ठीक हैं में अपना मन, बुद्धि, अहंकार सब आपके चरणों में समर्पित करता हूँ।

इतना कहकर राजा जनक चुप हो गए, अब बोलने की कोई गुंजाईश ही नहीं बची।

इतने में एक ब्राह्मण आ गया, उसने राजा जनक की स्तुति कि फिर कहा हे राजन आप बहुत बड़े दानी हैं, मैने आपके दान की बड़ी चर्चा सुनी हैं, मैं बहुत दूर से आया हूँ मेरी पुत्री का विवाह हैं, मुझे ५०० स्वर्ण मुद्राएँ चाहिए। अब राजा क्या कहें उन्होंने तो अपना मन, बुद्धि, अहंकार सब गुरु के चरणों में समर्पित कर दिया था।

जब ब्राह्मण ने बहुत देर स्तुति की तथा तब भी राजा ने कोई जवाब नहीं दिया तो वह ब्राह्मण राजा को अपशब्द कहने लगा कैसे नालायक राजा हो, कुछ कहते क्यों नहीं, देना हैं तो दो, नहीं देना हो तो मना ही कर दें, फिर वह अपशब्द कहता हुआ वहाँ से चला गया।

तब अष्टावक्र ने किसी को बुलाकर कहा कि अरे भई उस ब्राह्मण को कुछ देकर सन्तुष्ट कर दो।

उसके पश्चात् अष्टावक्र ने राजा जनक से पूछा कि हे राजन् जब वह ब्राह्मण आपकी प्रशंसा कर रहा था, तब आपको कैसा लग रहा था।

जनक-मुझे तो कुछ नहीं लगा, मैने तो अपना मन आपको समर्पित कर दिया, मुझे कुछ नहीं लगा।

अष्टावक्र-जब आपको उन्होंने बुरा-भला कहा तब कैसा लगा?

जनक-कुछ भी महसूस नहीं हुआ।

अष्टावक्र-बस यही आपकी स्थिति हैं, जिसमें प्रशंसा व बुराई दोनों का स्पर्श नहीं हैं। तथा ये राज्य अब मेरा हैं ओर इसे अब आप चलाओगे। अपने स्वरूप में स्थित रहो।

इस प्रकार से हमने देखा कि किस प्रकार से यदि अहंता कही पर पूर्ण समर्पित हो जाए, तो भी व्यक्ति .....सत्ता, स्वभाव या स्पन्द में प्रतिष्ठित हो जाता हैं।

यामवस्थां समालम्ब्य यदयं मम वक्ष्यति।

तदवश्यं करिष्येऽहमिति संकल्प्य तिष्ठति।।२३।।

१९-१९

जिस अवस्था का आलम्बन लेकर मैंने तो समर्पित कर दिया अब जो यह कहेगा वह मैं करुँगा। स्पन्द तत्व में बैठ कर इस प्रकार का कहेगा, उस अवस्था में रहना चाहिए। जो होना है उधर से होना है। तो

वही स्वरूप है, स्वभाव है, वही स्वभाव की विस्मृति होने से ही गुण के प्रभाव में यह बहता है।

२२-१९ लेक्चर पूरा हुआ।

तामाश्रित्योर्ध्वमार्गेण सोमसूर्यावुभावपि।

सौषुम्नेऽध्वन्यस्तमितो हित्वा ब्रह्माण्डगोचरम्।।२४।।

ज्ञान के द्वारा समाधि-ज्ञान से मन व प्राण लीन

मन से प्राण लीन-जप करते करते भावना प्रधान समाधि। मन्त्र से

प्राण से मन निरुद्ध-प्राणायाम से,

यहाँ गुरु उपदेश से लक्षित की बात है।

अपान से अन्दर जाता है, प्राण से बाहर आता है। सोम से अन्दर जाता है, सूर्य से बाहर आता है। हं से बाहर जाता है, स से अन्दर जाता है। हंस का अभ्यास यौगिक मार्ग में यह मन्त्र है।

उस अवस्था का आश्रय लेकर किस अवस्था का आश्रय ले जिस अवस्था में सोम-सूर्य दोनों का मार्ग छोड़कर उर्ध्व मार्ग से सुषुम्ना में अस्त हो जाता है, तो उस अवस्था में प्राण लीन हो जाता है, तो मन लीन जाता है उस समय जगत छूट जाता है, शरीर आदि को छोड़कर स्पन्द तत्व में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, तब स्वरूप स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

उस समय सोम-सूर्य दोनों ऊर्ध्व मार्ग से सुषुम्ना

प्राण इड़ा पिंगला को छोड़कर सुषुम्ना में लीन

इधर मन लीन, आपके स्वभाव में, उधर प्राण लीन हुआ। उस समय सम्पूर्ण जगत को छोड़ देते है, स्वरूपस्थ हो गए। ब्रह्माण्ड के विषय को छोड़ दिया, इदं जगत शरीर आदि को छोड़ कर स्वरूप में प्रतिष्ठित हो गए। पहचान कर जब लक्षित कर लेगा उस समय यह अवस्था बनती है। उसके बाद वृत्ति भले ही बाहर आए। वृत्ति स्वरूप को बाध नहीं सकती है, ढकने सा है, ढक नहीं सकती है।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बाधित हो जाता है, जब स्वरूपमें स्थित हो जाता है। सारा ऐश्वर्य हो जाता है। शिवभाव को प्राप्त हो जाता है।

.....

तामाश्रित्योर्ध्वमार्गेण सोमसूर्यावुभावपि।

सौषुम्नेऽध्वन्यस्तमितो हित्वा ब्रह्माण्डगोचरम्।।२४।।

अब कहते हैं कि इस अवस्था का आश्रय लेकर, जिस अवस्था में अपनी पूर्ण अहंता कहीं समर्पित हो जाए तब मन निरुद्ध हो जाता हैं, जब मन निरुद्ध हो जाता हैं तब प्राण लीन हो जाता हैं, उस अवस्था को साधक को लक्षित करना चाहिए।

पहले कारिका का अनुवाद देख लें कि किसी व्यक्ति की अहंता किसी के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाए, उस समय मन की गति रुक जाती हैं जैसे ही मन की गति रुकती हैं, प्राण जो कि बायीं व दाई नाड़ी में बहता हैं वह मध्य नाड़ी में जाकर अस्त या लीन हो जाता हैं, उस समय महान आकाश में प्रबुद्ध योगी की चिन्मात्र अनुभूति में कोई आवरण नहीं रहता हैं।

कारिका क्रमांक २२ व २३ में भी क्षण बताए गए हैं कि जब प्रबुद्ध उन क्षणों में अपने स्वरूप को, अपने स्पन्द स्वभाव को लक्षित कर सकता हैं। इस कारिका क्रमांक २४ में भी ऐसी ही एक स्थिति या क्षण का वर्णन हैं। ऐसा बताया गया हैं कि मन व प्राण में सम्बन्ध होता हैं, एक की गति रुक जाए तो दूसरे की गति भी रुक जाती हैं। जब कभी भी मन की चंचलता समाप्त हो जाती हैं तो क्षणों में प्राण की गति अवरुद्ध हो जाती हैं, रुक जाती हैं। सामान्य रूप से प्राण इड़ा-पिंगला, सोम-सूर्य या बाई व दाहिनी नाड़ी में बहता हैं। जब यह गति रुक जाती हैं तब वह प्राण ऊर्ध्वमार्ग से सुषुम्ना में जाकर लीन हो जाता हैं। उन क्षणों में जब मन पूर्ण निरुद्ध हैं, प्राण लीन हैं, पुरुष को स्पन्द तत्व पूर्ण रूप से स्पष्ट लक्षित हो जाता हैं। ऐसी स्थिति किन्हीं के चरणों में अहंता के पूर्ण समर्पण होने पर निर्मित होती हैं।

तदा तस्मिन्महाव्योम्नि प्रलीनशशिभास्करे।

सौषुप्तदवन्मूढः प्रबुद्धः स्यादनावृतः।।२५।।

१६-२०

जब सोम व सूर्य प्रलीन हुए तो जो अवस्था आई वह अवस्था मूढ के लिए सुषुप्ति के समान है, परन्तु वही अवस्था प्रबुद्ध को स्पन्द पहचानने का अवसर है, क्योंकि इस समय वह अनावृत्त है।

कारिका-२५

तदा तस्मित् महाव्योमित् प्रलीनशशिभास्करे।

सौबुप्तपदवत्मूढ़ः प्रबुद्धः स्यादनावृतः।।२५।।

कारिका क्रमांक २२, २३, २४ तथा इस कारिका क्रमांक २५ में उपदेश के माध्यम से स्वरूप को लक्षित करने का मार्ग बताया हैं। यहाँ इस कारिका में बताते हैं जब सोम व सूर्य अर्थात् सूर्य व चन्द्रमा .....अपान महा आकाश में, हृदय में लीन होते हैं, जिस समय वृत्तियाँ अर्थात् विचार लीन हो जाते हैं उस समय जो स्थिति बनती हैं उसे अल्पज्ञानी सुषुप्ति के समान अनुभव करता हैं कि जिस समय विचार भी नहीं थे, मैं था, उस अवस्था में वह अनुभव करता हैं कि विचार नहीं हैं, मैं हूँ, तो वह स्वरूप को झट पहचान जाता हैं, क्योंकि वह लगातार इसी की खोज में तो लगा था। तो कहा हैं अल्पज्ञानी के लिए उस स्थिति में स्वरूप अनावृत रहता हैं तथा वह पहचान लेता हैं। पर्दा तो अनावृत है ही पहचान नहीं थी, तो तब चित्र (विचार) का पड़ना रुका, प्रकाश (जाग्रत अवस्था) तो था ही, तो पर्दे (स्वरूप) को झट पहचान लिया।

द्वितीय निष्पन्द

सहजविद्योदय

तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः।

प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम्।।२६।।

उस अवस्था का बल लेकर ही मन्त्र सर्वज्ञ व बलशाली होते हैं तथा अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में प्रलीन होते हैं।

अब कहते हैं कि जो मन्त्र होते हैं उनको शक्ति कहाँ से मिलती हैं। तो बताते हैं कि तद् आक्रम्य उस स्पन्द अवस्था में स्थित होकर या उससे बात लेकर ये सर्वज्ञता आदि बल को लेकर सुशोभित हो जाते हैं, तथा ऐसा उस समय मन्त्र का अधिकार हैं उस अधिकार में वे कार्य करते हैं, किस प्रकार करते हैं तो कहते हैं कि जिस प्रकार इन्द्रियाँ, शरीरधारियों में उनके संकल्प के अनुसार कार्य करती हैं।

हम पहले उदाहरण देख लें उसके पश्चात् कारिका या श्लोक को समझने का प्रयास करेंगे।

मान लो किसी कमरे में बल्ब, पंखा तथा हीटर लगा हैं, ठीक। तो बल्ब, पंखा या हीटर हैं। ढाँचा। जब यह ढाँचा मूल अर्थात् विद्युत से संयुक्त होता हैं तो कार्य करने में सक्षम होता हैं तो पहली बात क्या जानी कि मूल से संयुक्त होने या जुड़ने पर कार्य करने में सक्षम होना।

दूसरे बात जैसा ढाँचा दिया हैं वैसा कार्य करना अर्थात् बल्ब ढाँचा हैं तो प्रकाश देना । पंखा हैं तो हवा देना, हीटर हैं तो गर्मी पैदा करना आदि।

एक और बात जाने कि ढाँचे के समर्थन के अनुसार कार्य करना, अब बल्ब आदि १०० वॉट का हैं तो १०० वॉट का प्रकाश देना, विद्युत में असीम सामर्थ्य हैं परन्तु बल्ब की सामर्थ्य के अनुसार उतनी प्रकट होती हैं। ठीक

तो अब कहते हैं कि ये जो मन्त्र हैं (ढाँचा) तथा ये पूर्ण अहंता कहो, स्पन्द कहो, निविकल्प अवस्था कहो उससे बल लेकर (सर्वज्ञ आदि बल) अपने-अपने अधिकार अर्थात् क्षेत्र के अनुसार कार्य करते हैं। जैसे कोई साँप का ज़हर उतारने का हैं, कोई बिच्छु पकड़ने का हैं, या जैसे कोई कार्य रोग को दूर करने का हैं, कोई आकर्षण का हैं आदि-आदि। तो ये मन्त्र हैं अलग-अलग प्रकार ढाँचा (जैसे बल्ब, पंखा आदि) ये शक्ति प्राप्त करते हैं स्पन्द या निर्विकल्प अवस्था में, तथा अपने-अपने कार्य में लगते हैं।

फिर कारिका मैं बताया कि जैसा शरीरधारी संकल्प करता हैं उसकी इन्द्रियाँ वैसा ही कार्य करती हैं। जैसे आँख का कार्य हैं देखना, कान का सुनना, जीभ का स्वाद लेना। तो आँख कब देखती हैं? जब देखने का संकल्प होता हैं। वैसे ही जब सुनने का संकल्प होता हैं, तो कान सुनते हैं, आदि। इन्द्रियाँ हैं ढाँचा तथा संकल्प के अनुसार कार्य करती हैं। उस ढाँचे को बल मिल रहा हैं संकल्प का।

तत्रैव संप्रलीयन्ते शान्तरूपा निरञ्जनाः।

सहाराधकचित्तेन तेन ते शिवधर्मिणः।।२७।।

११.४-२१

जो मन्त्र हैं वो परमात्म कुल हैं कि सृष्टि कुल हैं । ये शिवधर्मी हैं, जगत धर्मी नहीं है। जिस समय प्रयोग करता है व्यक्ति उस समय शिव बल को लेकर कार्य करते हैं, प्रयोग समाप्त होकर अपनी जगह पर चले जाते हैं।

मन्त्र शक्ति चैतन्य है।

अब विचार करते हैं कि ये मन्त्र शिवधर्मी हैं या जगत धर्मी हैं तो कहते हैं कि ये मन्त्र शिवधर्मी हैं। अपना कार्य करते समय शिवावस्था या स्पन्द अवस्था बल लेकर, अपना कार्य करने के उपरान्त, उपयोग करने वाले के चिन्त के साथ-साथ अपने मूल अर्थात् शिवावस्था या स्पन्द अवस्था में शान्तरुप बल जानने के कारण तथा निरञ्जना, बिना किसी उपाधि के होने के कारण शिव स्वभाव में लीन हो जाते हैं इसलिए वे शिवधर्मी हैं।

उदाहरण विद्युत-बल्ब

जैसे विद्युत में प्रकाश शक्ति हैं, ठीक हैं। परन्तु वह प्रकाश शक्ति कैसे हैं, अनभिव्यक्त हैं, तार में वह शक्ति अनभिव्यक्त हैं बल्ब के माध्यम से वह प्रकाश शक्ति क्या हुई अभिव्यक्त हुई। तो प्रकाश शक्ति किसमें थी, विद्युत में, माध्यम में, बल्ब में। तो बल्ब क्या हैं ढाँचा हैं, शक्ति को अभिव्यक्त करने का। ठीक इसी प्रकार मन्त्र एक ढाँचा हैं, मन्त्र को शक्ति कहाँ से मिल रही हैं, मूल से, शिवावस्था से, तो ये मन्त्र कैसे हैं शिवधर्मी हैं। मन्त्र अर्थात् मन्त्र की सामर्थ, मन्त्र की शक्ति कैसी हैं शिवधर्मी हैं।

अतः कारिका में कहा हैं कि अपने कार्य करने के उपरान्त ये मन्त्र शान्तरूप व निरञ्जन होकर साधक के चित्र के साथ ही स्वरूप में लीन हो जाते हैं, इसलिए ये शिवधर्मी हैं। अस्तु।

यस्मात्सर्वमयो जीवः सर्वभावसमुद्भवात्।

तत्संवेदनरूपेण तादात्म्यप्रतिपत्तितः।।२८।।

३.००-२२

कहते हैं कि देखों यस्मात् ये जीव सर्व मय है, जैसे स्वप्न में सारी सृष्टि आपसे बाहर नहीं है, इसी प्रकार इस समय भी जीव सर्वमय है। क्योंकि सर्वभाव समुद्भवात, इसी से सबके भाव का उदय बना है। क्योंकि आपके ज्ञान का विषय नहीं बना तो कोई विषय सिद्ध नहीं हुआ। तत्संवेदन एक-एक संवेदन है इसके साथ तादात्म्य हो गया तो लगता है कि ये मैं हूँ। और जब सबके साथ तादात्म्य हो गया तो मैं विश्व हो गया। सर्व अहंता कौलितं .. भोजन बाहर था, उसको खा लिया अब भोजन कहाँ गया। शरीर में मैं करके रखा था तो मैं हो गया। अनात्मा था वो आत्मा हो गया। ऐसी ही सीमित अहंता है तो बाहर मालूम हो रहा है। शरीर अहं को छोड़ दे फट जाने दे, जैसे घड़े को फोड़ दे तो घटाकाश व्यापक हो गया।

शरीर के साथ तदात्म्य करके संकुचित हो गया। अहंता छोड़ दी तो व्यापक हो गया।

यह जीव सर्वमय हैं क्योंकि सभी भाव इससे ही उत्पन्न होते हैं। यह उनसे संवेदन रूपी तादात्मक करके उसकी सृष्टि करता हैं।

हम बहुत पहले देख चुके हैं कि यह सृष्टि ज्ञानविषयक है। अपकी सृष्टि आपके ज्ञान के भीतर हैं। जितना भी आपको ज्ञान हैं, वही आपकी सृष्टि हैं, वह आपकी दुनिया हैं। आपके ज्ञान से बाहर, आपकी दुनिया नहीं हैं। तो सृष्टि या दुनिया क्या हैं, आपका ज्ञान। यह हुई एक बात।

हम देख चुके हैं कि शरीर से जड़। आप हैं चैतन्य। आपने शरीर से तादात्म्य किया, शरीर को अपना माना या जाना तो शरीर में चेतन के लक्षण दिखने लगे, शरीर आपके अन्दर आ गया। इसी प्रकार जब आप प्रत्येक से तादात्मक कर लो, तब पूरा विश्व आपके अन्दर आ जाएगा। आप विश्वरूप हो जाओगे, पूरा विश्व आपका शरीर हो जाएगा।

यह बात को एक प्रकार से समझना हुआ। आइए अब दूसरी दृष्टि से देखें। एक आपका शरीर हैं, जिसे अन्नमय शरीर कहते हैं। जो यह पाँच, साढें पाँच फीट का दिखता हैं, इसे आप अपना शरीर जानते हैं या मानते हैं। एक आपका भावात्मक रूप हैं, यह संसार के प्रत्येक भाव की सर्जना करता हैं। जो भी पदार्थ अनुभव में आता हैं, वहीं संवेदना का विषय बन जाता हैं तथा वह स्व करके ग्रहण कर लेता हैं।

इसे एक उदाहरण से देखें तो ज्यादा स्पष्ट हो गया। जैसे स्वप्न में जितना भी दिखाई देता हैं, सारा दृश्य तथा दृष्टा, सब आप ही हैं। आपके अतिरिक्त तो स्वप्न में कोई नहीं हैं। जितना कुछ भी दिखाई देता हैं वह भी आप को तथा देखने वाले (दृष्टा) भी आप ही हैं। जितना भी भोग स्वप्न में हैं वह भी आप हो तथा भोक्ता भी आप ही हो। वहाँ आप से अतिरिक्त कोई नहीं हैं।

परा-तुरिय

पश्यन्ती-सुषुप्ति बीज दशा

मध्यमा-स्वप्न

बैखरी-जाग्रत

तेन शब्दार्थचिन्तासु न सावस्था न यः शिवः।

भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः।।२९।।

३९.००-२२

तेन-वो सर्वात्मा भाव जब आपका हो गया। शब्दार्थ, अब शब्द का उच्चारण कर रहे हैं या अर्थ ग्रहित कर रहे हैं या तो शब्द या अर्थ व्यवहार हो रहा है। ऐसी कोई अवस्था नहीं है जिसमें शिव न हो, आप न हों। स्वप्न की ऐसी कोई अवस्था नहीं है, जिसमें आप न हो, पर्दे पर दिखने पर कोई अवस्था ऐसी नहीं है जो पर्दा रूप न हो। वासुदेव सर्वं।

हम पहले देख चुके हैं कि सारी सृष्टि ज्ञान विषयक ही हैं। सारी सृष्टि या सारा ज्ञान हमारे अन्दर ही हैं। बाहर दिखने पर भी हैं हमारे अन्दर। जैसे पेन बाहर हैं परन्तु हमें पेन का ज्ञान होने पर ही वह पेन रूप में दिखता हैं, अन्यथा वह वस्तु के रूप में

दिखता आदि। तो अर्थ क्या निकला कि हमारा ज्ञान ही हमें बाहर दिखता हैं। बाहर उतना ही दिखता हैं। जितना हमें ज्ञान हैं। अर्थात् हमारा ज्ञान ही ज्ञेय के रूप में दिखता हैं। तो ज्ञान हमारे भीतर हैं, ज्ञाता हम हैं, भोक्ता हम हैं तो भोक्ता का भोग जो भोक्ता के हैं अन्दर परन्तु दिखता बाहर हैं। भोक्ता ही भोग के रूप में ज्ञेय के रूप में बाहर दिखता हैं।

इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।

स पश्यन्सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः।।३०।।

६.००-२३

जिसका चित्त इस भाव में चला है, जिसकी बुद्धि तदाकार को प्राप्त हो गई। जिसको शिव तत्व की अपरोक्षानुभूति उत्पन्न हो गई। उसको सारा जगत खेल है। नाट्यकार को किसी भी पात्र का बन्धन नहीं होता चाहे वो चोरी करे। उसके साथ उसका संबंध नहीं बनता। पृथक स्वरूप होने से बंधंन नहीं बनता। मुझसे अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

जैसे भगवान अपनी विभूति का वर्णन करते हैं। जब बुद्धि शिव स्वरूप में प्रतिष्ठ हो जाएगी।८.४४-२३।। सीमित अहंता को छोड़कर

इति वा.. जिसका इस प्रकार का अनुभव हो गया, ज्ञान हो गया। उसको क्रीड़ा रूप से अखिल जगत को देखता है, शरीर उसका भले ही दिखाई दे रहा हो वह जीवन मुक्त है, शरीर दिखाई देने से वह शरीर वाला नहीं है, वह शिव भाव में स्थित है,इस स्वभाव वाला जिसका चित्त है, सारा जगत मन में है। मेरे रूप का है। वह सब कुछ क्रीड़ा रूप से देखता है, जैसे ईश्वर मुक्त है, वैसे वह भी मुक्त है। शरीर उसके लिए बन्धन नहीं है। उसकी समझ ही दूसरी है तो बंधन कैसा। बंधन अहं ममता से होता है। रागद्वेष से बंधन है। समझ जब गलत न हो तो बंधन कहाँ से होगा। यही पूर्ण अहं है। पूर्ण अहं भाव में अपने मन से क्रीड़ा रचे व खेले। उसको किसी भी प्रकार शंका से रहित है, भेद होने से शंका उत्पन्न होती है। निशंक होता है। जिसको तत्व दिखता है वह शास्त्र का अर्थ निशंक भाव से करता है।

कोई गंगोत्री देख ले तो आम का बगीचा के वर्णन आपको स्पर्श नहीं होगा।

जब व्यक्ति इस प्रकार की अनुभूति कर लेता हैं, किस प्रकार की अनुभूति, जो कारिका क्रमांक २८-२९ में बताई गई, कि जैसे हमने इस जड़ शरीर से तादात्म्य कर लिया तथा इसको अपने अन्दर मान लिया वैसे ही सारे जगत से तादात्म्य करके सारे जगत को अपने अन्दर कर लिया।

या जो जानना हैं सृष्टि अर्थात् ज्ञान। तथा जितना मेरा ज्ञान हैं वही ज्ञेय के रूप में दिख रहा हैं जितना भोग हैं वही भोक्ता के रूप में दिख रहा हैं। इस प्रकार की जिसकी अनुभूति हैं उसका यह सारा जगत (अपने ही) खेल के समान लगता हैं, मालूम होता हैं। तो इस प्रकार से लगातार देखता हैं, उसकी जीवन मुक्ति में किसी प्रकार का संशय नहीं हैं।

अयमेवोदयस्तस्य ध्येयस्य ध्यायिचेतसि।

तदात्मतासमापत्तिरिच्छतः साधकस्य या।।३१।।

१३.००-२३

साधक है, साधक मन्त्र प्रधान गुरु से परम्परा ग्रहण किया। मन्त्र का अर्थ देवता होता है, जो इष्ट है वही तो मन्त्र का अर्थ है। यहाँ पर आपका इष्ट शिव है। जो सम्पूर्ण जगत उत्पन्न, संहार पालन करने वाला। वह इष्ट शांभोपाय समझ में नहीं आया तो मन्त्र ग्रहित किया। मन्त्र का अर्थ देवता हुआ, मन्त्र का आप अनुसंधान कर रहे है। मन को मन्त्र के साथ जोड़ेगे मन्त्र देवता के साथ है, तो मन देवता के साथ जुड़ा। मन शरीर के साथ था तो जीव था। उसे मन्त्र के आधार पर देवता के साथ जुड़ा, तद पदार्थ, शिव, अब मन शिवाकार हो गया। जब मन शिवाकार हो गया तो आप शिवाकार हो गए।

पहले (२५ कारिका तक) प्रकरण चल रहा था, शाम्भोपाय का। उसके बाद से प्रकरण चल रहा हैं शाक्तोपाय का। शाक्तोपाय में उपदेश के द्वारा स्वरूप में स्थित कराते हैं, आत्मबोध या आत्मानुभूति कराते हैं, जो शाम्भोपाय को ग्रहण करते समय सक्षम नहीं हैं योग्य नहीं हैं उनके लिए शाक्तोपाय हैं, इसमें मन्त्र का सहारा लेते हैं।

इस कारिका में बताते हैं कि जो साधक देखना प्राप्ति की इच्छा रखता हैं अतः वह उस देवता का मन्त्र लेता हैं, उस मन्त्र से उस

देवता का ध्यान करता हैं, ध्यान मन से करता हैं, ध्यान करते-करते मन देवता रूप हो जाता हैं यही देवता का उदय हैं देवता का उदय कहो, तादात्म कहो, एक ही बात हैं । जब मन देवता रूप हुआ, तो साधक देवता के स्वभाव को प्राप्त कर लेता हैं।

यहाँ देवता शिव हैं, शिव सर्वज्ञ हैं, सर्वव्यापक हैं तो जब साधक का मन शिवभाव हुआ तो वह भैरव हो गया। वही भैरव भाव उदय हैं।

प्रक्रिया में अंगन्यास, करन्यास के द्वारा शरीर में देवता का न्यास कर, मन से देवता के रूप (सर्वव्यापक) का चिन्तन करते हुए जय करना।

इयमेवामृतप्राप्तिरयमेवात्मनो ग्रहः।

इयं निर्वाणदीक्षा च शिवसद्भावदायिनी।।३२।।

४४.४०-२३

इयमेव.. तद स्वभाव प्राप्ति -जो की समापत्ति इसी का नाम अमृत प्राप्ति है, शैव परम्परा में यह नहीं है कि देवता होकर अमृत प्राप्त करता है, या कोई पदार्थ प्राप्त करता है। यही अमृत प्राप्त है। स्वरूप समापत्ति ही अमृतप्राप्ति है, इसी का नाम इयमेवामृतप्राप्ति, अपने वास्तविक स्वरूप का ग्रहण इसी का नाम है। देवता रूप में स्वरूप ग्रहण। इयं निर्वाणदीक्षा इसी का नाम निर्वाण दीक्षा, मोक्ष दीक्षा।

जाग्रत अवस्था में ही योगी अपनी इन्द्रियों में तीव्र एकाग्रता के द्वारा जैसी इच्छा करता हैं, वह पदार्थ उस इन्द्रिय के लिए उपस्थित हो जाता हैं। जैसे उसे किसी व्यक्ति या स्थान विशेष को देखने की इच्छा हुई तो वह व्यक्ति या स्थान उसके नेत्र-इन्द्रिय में (सूक्ष्म, अन्दर) प्रकट हो जाता हैं तथा वह योगी उसका दर्शन कर लेता हैं। वह उस योगी के द्वारा अवधान (तीव्र एकाग्रता) के द्वारा संभव होता हैं।

आइए इस कारिका का थोड़ा विश्लेषण करें। माना कि कोई कमरा या खुला स्थान हैं, आपके पास एक मोबाइल फोन हैं, उस कमरे में या खुले स्थान पर उस मोबाइल फोन को रिसीव कर सकते हैं, जिस पाईंट या बिंदू पर आपने आपका मोबाइल रिसीव किया, उस पाईंट या बिंदु पर दूसरा मोबाईल भी रिसीव कर सकते हैं, इसी प्रकार उस पाईंट या बिंदु पर कोई भी मोबाईल रिसीव कर सकते हैं तो थोड़ा सूक्ष्मता से समझें कि उस पाईंट या बिंदु पर हैं सारी तरंगे, सारे मोबाईल फोन की तरंगे, पर ग्रहण किसको कर रहे हैं, जो आप चाहते हैं, उसको तरंग ग्रहण कर रही हैं, हैं सारी तरंगे। इस प्रकार कोई रेडियों आपके पास हैं, उसमें सारी तरंगे हैं, रेडियो स्टेशन पर रिसीव आप वह कर रहे हो, जो आप चाहते हो।

ठीक इसी प्रकार इस जाग्रत अवस्था में सारे पदार्थ, सारी वस्तुएँ उपलब्ध हैं, सब कुछ उपलब्ध हैं, आपके सामने उतना प्रकट हैं, जितने की आप इच्छा करते हो, चाहते हो। आप जैसे लोग, जैसे पदार्थ, जैसी वस्तु चाहते हो वैसे ही लोग, वैसे ही पदार्थ, वैसी ही वस्तुएँ आपके सामने प्रकट हैं।

यथेच्छाभ्यर्थितो धाता जाग्रतोऽर्थान्हृदिस्थितान्।

सोमसूर्योदयं कृत्वा संपादयति देहिनः।।३३।।

३२-२५

देहिनः इच्छाभ्यर्थितः धाता हृदयस्थितान् सोम सूर्योद संपादय- जाग्रत देहिन -जाग्रत अवस्था में जो देहि है, उसके हृदय स्थितान्-स्वरूप में स्थित जो पदार्थ है, उनको संपादित करता है, जो इच्छा उसकी इच्छा है, संकल्प है, जो प्रार्थना से युक्त प्रगट है।

कोई समर्थ है, जितनी प्रार्थना है उसके अनुसार लेकर चला गया। भण्डार अनन्त है, प्राकट्य कितने का होगा, जितनी उसकी प्रार्थना होगी।

जाग्रत इच्छा कर हृदयस्थितान् अर्थात्, सोमसूर्योदय इनका पारिभाषिक शब्द, सोमसूर्योदय जहाँ प्राण-अपान होता है वहीं मन विकसित होता है, क्रियाशक्ति को लेकर संपादन करता है। स्वरूप में अनन्त सृष्टि की सामर्थ्य है, परन्तु करता है जितना अभ्यर्थना है,

अनेकार्थ .. नट मल्ल, जैसे नट स्वांग बनाकर कुछ करता है, सारे खेल में कुछ चीज ही दिमाग में बैठती है, कुछ में चित्त एकाग्र होता है ,सब में नहीं होता, सोम-सूर्य, प्राण अपान को एकाग्र करना, आँख आती में एकाग्रता होगी तो उतना ग्रहण करता है, बुद्धि में महत्व में मालूम हो तो एकाग्र है, अपनी बात मालूम हो तो एकाग्र हो जाता है। इच्छा-अवधान-ग्रहण।

तथा स्वप्नेऽप्यभीष्टार्थान्प्रणयस्यानतिक्रमात्।

नित्यं स्फुटतरं मध्ये स्थितोऽवश्यं प्रकाशयेत्।।३४।।

२१-२८

इसी प्रकार स्वप्न मे भी अभीष्ट पदार्थ को प्रकाशित करता है। किसी न किसी प्रकार से मन संबंध बना रहता है। इसलिए अभीष्टता इसमें है। इच्छा गत प्रार्थना जाग्रत के समान स्वप्न में भी हेतु बनती है। उसी प्रकार का। वही दिखेगा दूसरी मेंनहीं दिखेगा। जिस समय जिस प्रकार का भोग है ,उस समय उसी प्रकार की बुद्धि हो जाएगी।

पिछली कारिका में बताया था कि जाग्रत अवस्था में जैसी इच्छा, संकल्प या प्रार्थना होती हैं, उसके अनुसार ही वस्तु प्रकट होती हैं।

अब कहते हैं कि स्वप्न में भी जो अपनी इच्छा हैं उसका अतिक्रमण नहीं होता हैं, उस समय हम अपने मन को ही देखते हैं, उस समय हमारा मन ही दृश्य बनता हैं।

जाग्रत में कहो या दुनिया या ब्रह्माण्ड में कहो तो अनन्त वस्तुएँ हैं, अपने सामने प्राकट्य कितने का हैं, जितने की अपनी इच्छा हैं, संकल्प हैं, प्रार्थना हैं। अपने अन्दर ही आप देखोगे तो पाओगे कि अनेकाभाव या अनेक प्रकार का ज्ञान हैं, परन्तु उस समय थोड़ा भाव या ज्ञान प्रकट हैं।

तो आपने एक बात जानी कि जैसा अपना संकल्प हैं, इच्छा हैं, प्रार्थना हैं, वैसा जाग्रत हैं, वैसा ही स्वप्न भी हैं।

एक फर्क या अन्तर हैं जाग्रत तथा स्वपन में। जाग्रत में सत्ता एकदम स्पष्ट हैं, इसके बारे में कुछ शंका नहीं हैं। हमें अपने अस्तित्व के बारे में कोई शंका नहीं हैं। जाग्रत अवस्था में मैं हूँ इस बारे में कोई शंका नहीं हैं। इसे कहते हैं जाग्रत में सत्ता एकदम स्पष्ट हैं। स्वप्न अवस्था में चैतन्य प्रकाश एकदम साफ रहता हैं। स्वप्न में मकान हैं, रोड हैं, जीव हैं, प्रकाश हैं, वहाँ सब आपके प्रकाश से प्रकाशित हैं। सब कुछ आप ही से हैं, वहाँ दूसरे किसी भी अन्य माध्यम की आवश्यकता नहीं हैं। वहाँ सब कुछ आप ही हो वास्तव में आपके अतिरिक्त कोई हैं ही नहीं।

जैसा हम देख चुके हैं कि स्वप्न में मन ही दृश्य हैं, हम जानते हैं कि संकल्प अवस्था अपने संकल्प का ही प्राकट्य हैं। अस्तु

अन्यथा तु स्वतन्त्रा स्यात्सृष्टिस्तद्धर्मकत्वतः।

सततं लौकिकस्येव जाग्रत्स्वप्नपदद्वये।।३५।।

३०-२८

अन्यथा यदि आप ऐसा नहीं मानते हो तो कि सारा स्वसंकल्प से प्रतीत हो रहा है, जैसे स्वभाव वाद है। स्वाभाविक मान लोगे तो सृष्टि रूपी धर्म मान ले तो हो रहा है, तोदोनों में स्वतन्त्र रूप से कुछ भी होता, संकल्प या वासना से कोई संबंध नहीं बनता।

टीका-

ऊटपटांग फालतू सृष्टि होती है, कोई संबंध बिना सृष्टि दिखती, कुछ तो भी दिखता, अव्यवस्थित दिखता, नेत्र से रूप दिखता यह व्यवस्था नहीं बनती।

जाग्रत व स्वप्न की सृष्टि आपके संकल्प, इच्छा या प्रार्थना के अनुसार प्रकट हैं, ऐसा बताने के पश्चात् इस कारिका में कहते हैं कि यदि ऐसा नहीं होता तो जाग्रत-स्वप्न में कोई भी सृष्टि आपके सामने आती रहती। पूर्व-पर राहित्य अर्थात् जो भी सृष्टि आपके सामने आती हैं। उसका पूर्व (पहले) तथा पर (बाद) से कोई संबंध नहीं रहता, अर्थात् आपके सामने ऊट-पटांग सृष्टि आती रहती।

यदि अपनी इच्छा या प्रार्थना या संकल्प आदि से संबंध न होता तो हमारे सामने कोई भी दृश्य कभी भी उपस्थित हो जाता।

कोई भी शब्द कभी भी और कुछ तो भी निकलते रहते सुनाई देते रहते आदि। न तो व्यक्ति किसी भी चीज़ को पाने का प्रयास करता, न तो प्राप्त करने पर हर्ष होता, और न ही न प्राप्त होने पर दुःखी होता। न उसमें कोई भाव उत्पन्न होता, आदि।

कारिका-३६

अभी पिछली तीन कारिकाओं में यह बताया कि जाग्रत व स्वप्न की सृष्टि आपके संकल्प, इच्छा या प्रार्थना के अनुसार प्रकट हैं। स्वरूप में तो सारी सृष्टि हैं, परन्तु जैसी आपकी इच्छा या संकल्प हैं, उतनी ही सृष्टि का प्राकट्य हैं।

अब यदि कोई प्रश्न करे कि यदि स्वरूप में ही सब कुछ हैं और हमारे संकल्प के अनुसार सामने प्रकट होता हैं तो क्या पूरी सृष्टि में हम जो देखना सुनना चाहे वह देख-सुन सकते हैं अब कारिका न.३६ कहते हैं।

यथा ह्यर्थोऽस्फुटो दृष्टः सावधानेऽपि चेतसि।

भूयः स्फुटतरो भाति स्वबलोद्योगभावितः।।३६।।

४०-२८ (यही वर्णन ९-३२ में है।)

यथा जिस प्रकार अस्फुटो अपि दृष्ट साफ नहीं दिखाई दे रहा ऐसा पदार्थ भी , जब आप अपने चित्त को सावधान कर लेते हैं तथा अपना बल लगाते हैं तो भूयः स्फुटतरो तो स्फुट हो जाता है, अपनी इच्छा शक्ति बल से भावित होकर साफ मालूम होने लगता है।

पढ़ाई करने में विद्यार्थी -पहले ज्ञान नहीं था परन्तु फिर ज्ञान प्राप्त किया तो कैसे किया। अपना बल लगाकर स्पष्ट हो गया।

कहते हैं कि किसी व्यक्ति को दूर स्थित वस्तु स्पष्ट दिखाई नहीं दे रही हैं, परन्तु जब व्यक्ति सावधान होता हैं, एकाग्र होता हैं, देखने में अपना बल लगाता हैं तो वही खड़े-खड़े ही उस वस्तु को स्पष्ट रूप से देख पाता हैं।

जैसे कही दूर से कोई आवाज़ (या गाना) सुई दे रहा हैं जब आप चित्त को एकाग्र करते हैं तो आवाज़ (या गाना) पहले से स्पष्ट सुनाई देने लगता हैं।

और उदाहरण देखे किसी श्लोक को आपने सुना या उसका अर्थ सुना तो पहली बार में पूरा-पूरा समझ में नहीं आया। फिर आपने दो बार-तीन बार सुना, उसमें आपने अपना बल लगाया तो पहले से ज्यादा (अधिक) स्पष्ट हुआ।

वैज्ञानिक भी जब कोई खोज करते हैं तो अपनी वृत्तियों को एकाग्र करते हुए उस विषय में अपना बल लगाते हैं तो धीरे-धीरे जिस विषय में खोज करना चाहते हैं उसकी सूक्ष्म से सूक्ष्म बात या रहस्य भी जान लेते हैं।

तो अभी तक क्या जाना कि जब आप सावधान चित्त के साथ अपना बल लगाते हैं तो विषय या वस्तु अधिक स्पष्ट हो पाती हैं।

अभी गड़बड़ क्या हैं कि हमारा अभ्यास बाहरी विषयों को इन्द्रियों के माध्यम से देखने का हो गया हैं, स्वरूप में स्थित होकर देखने का अभ्यास छूट गया हैं। जब स्वरूप में स्थित होकर देखने, सुनने आदि का अभ्यास हो जाएगा तो तब देश, काल आदि का बन्धन (सीमा) समाप्त हो जाती हैं, इसे आगामी कारिका में स्पष्ट किया गया हैं।

तथा यत्परमार्थेन यदा यत्न यथा स्थितम्।

तत्तथा बलमाक्रम्य न चिरात्संप्रवर्तते।।३७।।

४.३२-२९ (यही वर्णन १७-३२ पर चल रहा है)

तथा-उसी प्रकार, जो वस्तु जहाँ, जिस समय जिस रूप में स्थित है, आप अपने चित्त को आत्मबल से वहाँ केन्द्रित कर देगे तो निश्चित उसको ग्रहण करने में समर्थ हो जाएगे, इसमें कोई समय नहीं है।

अब बताते हैं कि सारा जगत चैतन्य स्वरूप में स्थित हैं तथा आप भी चैतन्य स्वरूप हैं। तो यदि आप किसी वस्तु या पदार्थ या व्यक्ति के बारे में जानना चाहते हैं तो जैसे ही आप चैतन्य बल या आत्मबल पर आश्रित होकर सावधान करते हैं, एकाग्र करते हैं तो जो वस्तु, जिस देश व काल में स्थित हैं, उसे तुरन्त जान लेते हैं, इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं हैं।

देखो एक दो उदाहरण से देखते हैं। एक कमरा हैं (इस कमरे में) रेडियों, मोबाईल फोन, टी.वी आदि की तरंगे मौजूद हैं, आप यन्त्र के माध्यम से उसको ग्रहण कर रहे हैं। मोबाईल फोन से माध्यम से आप दूर देश में स्थित व्यक्ति से बात तत्क्षण उसी समय कर सकते हैं, (कर रहे हैं) वीडियों फोन या लाइव टेलीकास्ट के माध्यम से रूप अर्थात् दृश्य को या घटना को भी तत्क्षण

देख रहे हैं। तो देखो अभी हम यन्त्र के माध्यम से ग्रहण कर रहे हैं, रूप व शब्द है व्यापक, अभी हम यन्त्र के माध्यम से ग्रहीत कर रहे हैं। स्वरूप में सब कुछ स्थित हैं, उससे बाहर कुछ भी नहीं हैं, तो जब स्वरूप का बल लेकर या स्वरूप में स्थित होकर उस फ्रिक्वेन्सी को ट्यून करते हैं अर्थात् उस विषय के बारे में चित्त को एकाग्र करते हैं तो वह वस्तु या व्यक्ति को देख सुन पाते हैं। अभी दो इन्द्रियों का विषय सामने उपस्थित हो रहा हैं, आँख के लिए रूप तथा कान के लिए शब्द। भविष्य में जब विज्ञान और अधिक उन्नति या विकास करेगा, तब आप गन्ध को भी ग्रहीत कर पाएँगे।

स्वरूप या चैतन्य में भी सामर्थ्य हैं, सब हैं, अब आप यदि सावधान करें तो शब्द या रूप को ग्रहीत कर सकते हैं, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं हैं।

दुर्बलोऽपि तदाक्रम्य यतः कार्ये प्रवर्तते।

आच्छादयेद्बुभुक्षां च तथा योऽतिबुभुक्षितः।।३८।।

२२-२७ (यह प्रवचन ३३ केसेट में भी है।)

कोई दुर्बल है पर उस बल पर अपनी अहंता को लगा देता है, मन के अन्दर बल का आवेश करता है, (त्राटक आदि)। रजनीश को यही बल था। वशीभूत कर पाता है। यह अभ्यास है। है वह दुर्बल, परन्तु बल का आवेश का अभ्यास करता है तो कार्य में लग जाता है। मन में आवेश कर ले तो दुर्बल शरीर से भी बड़ा कार्य कर सकते हैं।

अमरनाथ जा रहे थे,१३-२७

१५-२० मिनिट विचार किया, संकल्प किया आवेश आ गया। चार मील बर्फ पर चला। शरीर मशीन के समान चलने लगा। अमर गंगा में स्नान किया बुखार उतर गया।

अत्यन्त भूख लगी एक आवेश आ जाए तो वह भूख गायब हो जाती है। चाहे भय से या स्मृति आदि किसी से भी आया हो, तो भूख प्यास भूल जाते है। दूसरी जगह चित्त लग गया।

.....

कारिका-३८

अब स्पन्द बल या आत्मबल कैसे प्राप्त करना, इसके बारे में संकेत करते हैं या बताते हैं कि देखो किसी भी चीज़ का एक आवेश होता हैं तथा वह आवेश मन में आता हैं या होता हैं। उस आवेश से आवेशित होकर व्यक्ति बड़े-बड़े कार्य करने में सक्षम हो पाता हैं।

इसे हम उदाहरण से भी देख सकते हैं कि कोई व्यक्ति हैं, किसी रोग या बिमारी से बहुत कमज़ोर हो गया हैं, किसी कमरे में बिस्तर पर लेटा हैं, उसमें उठने का भी सामर्थ्य नहीं हैं। माना उस कमरे में अचानक साँप आ जाए या अग्नि (आग) लग जाए जो भय के कारण भी एक आवेश होता हैं, उस आवेश से उस व्यक्ति में बल आ जायेगा, मन में भागने की शक्ति आ जाएगी, उस शक्ति को मन में प्राप्त करने के उपरान्त उसका कमज़ोर शरीर भी भागने में समर्थ हो पाएगा।

इसी प्रकार क्रोध आदि के कारण भी मन में एक प्रकार का आवेश आता हैं।

कारिका में आगे कहते हैं कि किसी आवेश के कारण व्यक्ति किसी कार्य में लगा हो, बहूत भूखा होने पर भी, आवेश के कारण कार्य लगे होने पर भूख का अनुभव नहीं कर पाता हैं।

इसे हम अन्य प्रकार से भी देख सकते हैं कि शरीर के किसी भाग में पीड़ा हैं। दाँत में, पेट में या पैर में दर्द हैं। परन्तु यदि पूरे मन से किसी कार्य में हम लगे हों तो पीड़ा का अनुभव नहीं होता हैं।

इसी प्रकार सब मन में स्वरूप का आवेश जाए तो स्वरूप की समर्थ मन में प्रकट हो जाएगी।

ऐसे स्पष्ट न हो तो संक्षेप में हम कहेंगे कि जैसा हम अपने मन में मान लेते हैं वैसी सामर्थ्य प्रकट होती हैं। शरीर दुर्बल होने पर भी मन में आवेश आने या होने पर चलने-फिरने-दौड़ने या भागने में समर्थ हो पाते हैं। तो मन ने चलने का आवेश लिया तो चल पाए।

इसी प्रकार यदि मन शिव या स्पन्द का जब आवेश लेगे तो शिव स्वभाव प्रकट हो जाएगा। शिवस्वभाव क्या हैं, सर्वज्ञता, तो सब कुछ जानने में समर्थ हो पाएगा। अभी अभ्यास छुटा हुआ हैं।

इसी बात को आगामी कारिका में और स्पष्ट करते हैं।

अनेनाधिष्ठिते देहे यथा सर्वज्ञतादयः।

तथा स्वात्मन्यधिष्ठानात्सर्वत्रैवं भविष्यति।।३९।।

२७.५२-२७

दूसरी चीज देखें, इस शरीर के साथ तादात्म्य किया, तो मन का शरीर के साथ तादात्म्य कर लेता है, शरीर पर चीटीं घूमती है तो ज्ञात हो जाता है, मन जितने-जितने का तादात्म्य करता है उतना उतना ज्ञात होता है. झट पकड़ लेता है, उसके बाहर हो तो साक्षी हो जाते हैं। उतने के अन्दर हो तो मानो अपने पर ही वज्र पड़ा, उस ममत्व में से कोई ममत्व टूट जाए तो वज्र पड़े तो नहीं मालूम होता है।

पेपर में लड़के के विषय में निकाल देते हैं कि मेरा संबंध नहीं है,

अभी हमने अपनी अहंता इस शरीर या देह में मान रखी हैं तो इस देह में होने वाली अनुभूति को हम महसूस करते हैं। जब हम अपनी अहंता (मैं पना, मैं पन) आत्म-तत्व में भाग लेंगे, स्पन्द तत्व में करेगे तो आत्मतत्व या स्पन्दतत्व में होने सेभी अनुभुति को जान सकेंगे।

आइये थोड़ा सा और स्पष्ट करें, आपने इस शरीर को अपना माना, तो इस शरीर में कहीं चींटी ने काटा, जूँ ने काटा तो आपने तुरन्त जान लिया। अब यदि अपनी अहंता को व्यापक कर लें, आत्मतत्व आप हैं, ऐसा व्यापक कर लें, तो पूरी सृष्टि में होने वाली घटना को तत्क्षण जान लेंगे।

कारिका-४०

हम जानते हैं कि जब आप स्वप्न देखते हैं तो स्वप्न की सारी सृष्टि आपके अन्दर ही हैं। स्वप्न में यदि आप किसी समस्या से ग्रसित हैं, यदि नींद खुल जाए तो आपको पता चलता हैं कि वास्तव में कोई समस्या नहीं हैं, स्वप्न की समस्या, समस्या नहीं हैं। वहाँ (स्वप्न) समस्या का कारण क्या था नींद। तो कारण अर्थात् नींद के समाप्त होने पर समस्या के लिए कोई जगह ही नहीं रही। (एक बात) दूसरी बात को थोड़ा बारिकी से समझें, स्वप्न में आपके अतिरिक्त कोई नहीं, वहाँ रोड़, मकान, खेत, खलिहान, साईकिल, पशु आप सब हैं। मान लो आप तेजी से साईकिल चला रहे हैं, पीछे कुत्ता लग गया, तो आप तेजी से साईकिल चला रहे हैं। तो देखो स्वप्न में आपने एक शरीर में अपनी अहंता कर रखी हैं, तो समस्या महसूस हुई, उसी के कारण जो आपका वैभव था, व्यापक ऐश्वर्य था, हर्ष था, एक शरीर में अहंता करने से हर्ष का क्षय हो गया। अपने आपको एक शरीर में केन्द्रित करने से हर्ष का क्षय हो गया।

ग्लानिर्विलुम्पिका देहे तस्याश्चाज्ञानतः सृतिः।

तदुन्मेषविलुप्तं चेत्कुतः सा स्यादहेतुका।।४०।।

(केसेट८-३६ में भी है)१०-३६,ग्लानि जो हैं यही शरीर को, आप अमर है, एक शरीर के साथ मिलने से सुखक्षयहोता है, ग्लानि न हो तो ये नहीं मरे, ग्लानि अज्ञान से उत्पन्न होती है, स्वरूप का उन्मेष हो जाए, तो आपकी ग्लानि दूर हो गई, जब हेतु(अज्ञान) नहीं रहा तो ग्लानि कहाँ रहेगी, तो जो अमर स्वरूप है उसमें कहाँ बाधा पड़ रही है।

हर्ष-क्षय में ४२-२७

हर्ष-क्षय क्या है, मन का उत्साह रहित होना, स्वाभाविक आल्हाद का क्षय, ग्लानि -मन में उत्साह की क्षीणता, मन का गिर जाना, यही देहे विलुप्ता, मन की शक्ति के बल से यह शरीर चलता, वह बल समाप्त हो जाए, तो शरीर बूढ़ा हो जाता है, जवानी में बुढ़ापा आदि, मन इस प्रकार का हो जाए तो इस।

ग्लानि कहाँ से आती है, ग्लानि की उत्पत्ति अज्ञान से होती है, स्वरूप का अज्ञान ग्लानि का हेतु है। यह अज्ञान ग्लानि का हेतु है। अज्ञान से उत्पत्ति होती है। यह शारीरिक शक्ति को क्षीण करती है, यदि स्वरूप का उन्मेष हो गया किसी में, तो अब उन्मेष होने से ग्लानि विलुप्त हो जाती है। तो ग्लानि कहाँ से होगी।

स्वरूप के अज्ञान से ग्लानि, ग्लानि से हर्षक्षय, हर्षक्षय से उत्साह क्षय, उत्साह क्षय से शरीर क्षीण, अब यदि स्वरूप का अज्ञान दूर हो गया तो ग्लानि समाप्त तो बीमारी नहीं हो सकती।। केसेट पूरी २७।।

अपने स्वरूप का जो स्वभाव हैं, वह हैं व्यापक। सारे सृष्टि के निर्माण करने की सामर्थ्य रखने वाला आपका वैभव हैं, अब अज्ञान के कारण आपने एक शरीर को अपना माना, जब एक शरीर को अपना माना तो हर्ष का क्षय हो गया, जैसे नींद में, स्वप्न में एक शरीर को मैं करके जाना या माना तो स्वप्न में एक शरीर को मैं करके जाना या माना तो स्वप्न में समस्या ही समस्या मालूम हो रही हैं, है नहीं पर मालूम हो रही हैं, वहाँ नींद के कारण समस्या मालूम हो रही हैं, एक शरीर में अहंता (मैं-पन) होने के कारण समस्या मालूम हो रही हैं। जागने पर समस्या का टिकने के लिए कोई आधार ही नहीं हैं। जिसको टिकने के लिए जगह नहीं हैं, वही स्वप्न में बड़ी समस्या बना खड़ा हैं।

ठीक इसी प्रकार जाग्रत में भी कोई समस्या नहीं हैं, एक देह से जुड़े होने के फलस्वरूप समस्या ही समस्या मालूम हो रही हैं, इसका कारण अज्ञान हैं।

यदि किसी प्रकार से स्वस्वभाव अपने स्वभाव का उन्मेष हो जाए, हम अपने स्वरूप में जग जाएँ, अज्ञान दूर हो जाएँ तो, अज्ञान के कारण उत्पन्न ग्लानि (हर्षक्षय) हैं उसको रहने या टिकने के लिए कोई जगह नहीं रहेंगी। जब एक देह में संकुचन नहीं रहेगा तो मरने का प्रश्न ही नहीं रहता। जैसे आभूषण भाव चाँदी का समाप्त हो जाए तो चाँदी तो आभूषण रहे न रहे, चाँदी रहेगी।

अब आगे की कारिका में बताएँगे कि स्वरूप का उन्मेष कैसे जगे।

एकचिन्ताप्रसक्तस्य यतः स्यादपरोदयः।

उन्मेषः स तु विज्ञेयः स्वयं तमुपलक्षयेत्।।४१।।

२-३७

चित्तवृत्ति एक विषय में लगी तो उसी विषय में तो नहीं रहती है, पर एक क्षण के बाद दूसरे विषय में चली जाती है। यह एक जगह ही रहे तो अलग बात है परन्तु ऐसा नहीं है। एकचिन्ताप्रसक्तस्य तो दूसरा चिन्तन आ गया है, तो यह चिन्ता गई कहाँ तथा दूसरी चिन्ता कहाँ से आई। लीन कहाँहुई तथा दूसरे का उदय कहाँ से हुआ वो जो मध्य है, उस तत्व को लक्षित करता है, योगी उसमेंजीता है

कारिका-४१

अब स्वरूप या स्पन्द का उन्मेष किस प्रकार हो, हम किस प्रकार स्वरूप में जग जाएँ, उसका तरिका या उपाय बताते हैं, साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि वही जग पाएँगा, वही जान पायेगा, जिसको जगने की इच्छा हैं जानने की हैं। जिसको अभी संसार में ही मज़ा आ रहा हैं, जिसको अभी पदार्थ में रस आ रहा हैं, जिसको सुख, दुःख ही अच्छा लग रहा हैं, जिसको रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श में ही सुख की प्रतीति हो रही हैं, वह स्वरूप में या स्पन्द में नहीं जग सकता।

अच्छा बताओं जिसको चित्र में अच्छा, बुरा लग रहा हैं, वह चित्र के आधार, अर्थात जिस पर चित्र टिका हैं पर्दा, उस पर कैसे पहुँच सकता हैं। क्योंकि कोई भी चित्र आया, तो वह तो चित्र देखने में लग गया, अब जब वह चित्र ने अपना प्रभाव डाल दिया, पूर्व संस्कार (पहले के जैसे संस्कार पड़े हैं) के अनुसार चित्र में या तो रस आया (अर्थात् राग पैदा हुआ) या चित्र खराब, गन्दा या अच्छा नहीं लगा (अर्थात् द्वेष आया) इस प्रकार से जिसके मन में चित्र को देखकर राग या द्वेष पैदा होता हो उसको पर्दा (पर्दे) कैसे समझा सकते हैं।

अब माना कोई व्यक्ति है, जो पर्दे को जानना चाहता हैं तो उससे कहेंगे कि देख भाई, चित्र को देखने में मत लग, तू तो बस ये देखने कि कोशिश कर, प्रयास करके यह देख कि पर्दे पर एक चित्र आया, फिर दूसरा, फिर तीसरा आदि चित्र आए, तो ये सब चित्र कैसे आए, किस पर टिके तो धीरे-धीरे अब अभ्यास करेगा तो जानेगा कि सारे चित्र एक ही आधार पर टिकते हैं, वह आधार हैं (पर्दे) पर्दा। चित्र बदलते रहते हैं, पर्दा नहीं बदलता हैं। चित्र रहे या न रहे पर्दा रहता हैं। तो वह व्यक्ति प्रयत्न से पर्दे को जान लेगा।

एक और उदाहरण को देखे फिर कारिका पर चलेंगे अर्थात् कारिका को देखेंगे।

जैसे कोई समुद्र हैं उसमें लहर हैं। हमने एक लहर को देखा, लहर उठी, फिर समुद्र में लीन हो गई, फिर दूसरी लहर उठी, वह भी समुद्र से ही उठी, समुद्र में ही रही, तथा समुद्र में ही लीन हो गई। तो क्या जाना की समुद्र की प्रकृति या स्वभाव हैं कि लहर या लहरों के रूप में रहना, अनेक लहरों के उठते हुए भी ज्यों का त्यों बने रहना।

(अब कारिका पर चलते हैं) ठीक इसी प्रकार हमारे (अपने) अन्दर विचार उठा, जैसे समुद्र में लहर उठी, फिर वो विचार समाप्त हुआ, दुसरा (दुसरी) विचार उठा, उसके बीच भी आपकी स्थिति हैं, उस समय जो स्थिति हैं, वही स्वरूप स्थिति को जानने का अवसर हैं, वही स्वरूप का (को) उन्मेष हैं, वही पर्दा हैं जिस पर सारे चित्र (विचार) चलते हैं, वही समुद्र हैं, जिसमें ये सारी लहरें (विचार) उत्पन्न होते हैं।

अब आप उन्मेष अवस्था को पहचान आपको स्वयं करना होगी, गुरु या मार्ग निर्देशक आपको रास्ता दिखा सकता हैं, लक्षित करा सकता हैं संकेत दे सकता हैं, परन्तु पहचान (तो) आपको स्वयं करना होगी।

तो साधक को सदैव यह देखने का प्रयास करना चाहिए कि ये विचार उठते कहाँ से हैं? एक विचार के समाप्त होने तथा दूसरे विचार के उठने के मध्य क्या स्थिति बनती हैं?

अतो बिन्दुरतो नादो रूपमस्मादतो रसः।

प्रवर्तन्तेऽचिरेणैव क्षोभकत्वेन देहिनः।।४२।।

अतः अस्मादुन्मेषादनुशील्यमानात् बिन्दुः तेजोरुपः, नादः प्रणावाख्यः शब्दः, रूपमन्धकारे दर्शनं, रसः अमृतास्वादो मुखे, एते त्दोभकत्वेन.... प्रवर्तन्ते अचिरेणा कालेन।।४२।।

पिछली कारिका में स्पन्द तत्व या स्वभाव को लक्षित करना बताया, स्वरूप स्थिति को लक्षित किया, अब बताते हैं कि जब साधक उस तत्व को लक्षित कर लेता है, तो सिद्धियाँ स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जाती हैं। सारी सिद्धियाँ उस स्पन्द तत्व में ही रहती हैं, उनके रहने का स्थान वही स्पन्द तत्व है, स्वभाव है, दो वृत्ति या विचार के बीच की स्थिति है।

यहाँ इस कारिका में कहते हैं कि स्वभाव में स्थित होने पर, स्पन्द में स्थित होने पर बिन्दु, नाद, रूप व रस स्वाभाविक रूप सिद्धियों के रूप में प्रकट होते हैं। बिन्दु का तात्पर्य यह है कि साधक को दिव्य या विशेष प्रकाश दिखाई देता है, वह प्रकाश बढ़ता है, ऐसा देखकर साधक के हृदय या मन में सुख या आनन्द उत्पन्न होता है। ऐसा होने पर यह कहा है कि यह सिद्धि साधक के मार्ग में बाधा डालने वाली होती है। क्योंकि सिद्धियों से या सिद्धियों में विशिष्ट या विशेष प्रकार की अनुभूति होती है, इसलिए कहा गया है कि सिद्धियाँ क्षोभ देने वाली हैं।

इसी प्रकार साधक नाद अर्थात् विशेष प्रकार की ध्वनि सुनाई देती है, रूप अर्थात् एकदम घनघोर अन्धकार में भी स्पष्ट दिखाई देता है तथा रस का उदय होता है, अर्थात् पदार्थको बिना खाए ही मुख में स्वाद आता है। ये सारी सिद्धियाँ जब साधक स्पन्द तत्व में बैठता है अर्थात् लक्षित कर लेता है तो शीघ्र ही प्रकट हो जाती है, परन्तु ये सभी सिद्धियाँ साधक के लिए अभ्यास में बाधा है, क्योंकि इनमें विशिष्ट ज्ञान होता है, यदि साधक का ध्यान इन सिद्धियों में लगा तो सिद्धियाँ साधक को उसके मार्ग से गिरा देती है।

जब साधक उन्मेष का अनुशीलन करता है तो सिद्धियाँ प्रगट होती है, सारा रूप तेज में, शब्द नाद में आदि होता है। मुख में अमृत रस का स्वाद आएगा। आदि यह सब क्षोभ हैं।

(एक्सरेस्, सेटेलाईट, इन्फ्रारेड केमरे आदि से देखा जा सकता है तो चैतन्य भी देख सकता है।)

पहले एक-दो दृष्टान्त देख ले, उसके पश्चात् कारिका देखते हैं। हम जानते हैं, जितना ज्ञान अपने अन्दर है, वही बाहर दिखता है। जैसे अपने को संस्कृत भाषा का ज्ञान है तो कोई विद्वान संस्कृत में कुछ कहे तो समझमें आएगा। यदि संस्कृत भाषा का ज्ञान है, व्याकरण का भी ज्ञान है तो यदि संस्कृत में गान करे, छन्दबद्ध रचना सुनाए तो त्रुटि की ओर ध्यान जाएगा। यदि व्याकरण आदि का ज्ञान न हो तो त्रुटि का भी पता नहीं चलेगा।

इसी प्रकार कोई व्यक्ति गायक कुछ गाए, हमें सामान्य ज्ञान है तो हम कहेंगे अच्छा गाया। जानकार व्यक्ति हुआ तो उसे राग का भी पता चलेगा, तथा त्रुटियों की ओर ध्यान जाएगा, त्रुटियाँ भी होगी। तो देखो ज्ञान है अपने अन्दर पर दिखता है बाहर। इसे ऐसा भी कह सकते हैं दिखता बाहर है पर है अन्दर। इसे शास्त्र की भाषा में कहते है कि ज्ञाता (जानने वाला) ही ज्ञेय (वस्तु, जो जाना जा रहा है) के रूप में दिखता है। जो आपके अन्दर ज्ञान है वही बाहर दिखता है।

अब कारिका को देखते हैं

दिदृक्षयेव सर्वार्थान्यदा व्याप्यावतिष्ठते।

तदा किं बहुनोक्तेन स्वयमोवावभोत्स्यते।।४३।।

जब साधक देखने की इच्छा से यह देखता है कि बाहर जितना भी दिखाई दे रहा वह मैं ही हूँ या अपनी व्याप्ति बाहर के सारे जगत में कहें या सारे जगत को इस प्रकार देंखें कि मेरा ही ज्ञान जगत के रूप में दिखाई दे रहा है तो साधक स्वयं स्पन्द तत्व या स्वरूप का साक्षात्कार करने में सफल हो जाता है, इसमें बहुत कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। जैसे जब आप मनोराज्य करते हैं तो देखो मन में जो भी चल रहा है वो सब आपके अन्दर है। सपने में भी सारा विश्व अन्दर है, परन्तु जगने पर पता चलता है। वैसे ही जाग्रत में यह देखे कि बाहर जितना भी है वह मेरा ही रूप है।

दिदृक्षा इव. दिदृशा में स्थिति है तो आपकी स्थिति है, देखने के विषय इच्छा से पृथक नहीं होता है वैसे ही सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थ को अपने ज्ञानस्वरूप से स्थिति कर लेता है तो बहुत क्या कहे स्वयं अपने स्वरूप का अनुभव कर लेता है। जब विश्व को अपने शरीर में परिकल्पित देखता है , तो स्वरूप को देख लेताहै।

श्री

आइए पहले एक बात को दोहराए या पुनः समझें, कि देखो कोई भी वस्तु है उसका ज्ञान हमारे अन्दर पहले है, वस्तु बाहर हमें मालूम भले ही होती है, परन्तु उस वस्तु का ज्ञान पहले से ही हमारे अन्दर है तभी हमें वह बाहर मालूम होती है। जैसे माना कि कोई पेड़ है, मान लो कि नीम का पेड़ है, अब यदि आपको पेड़ पता है, तो बाहर आपको पेड़ दिखेगा, यदि पेड़, झाड़ियाँ, पौधे, वनस्पति में ज्यादा अन्दर नहीं मालूम है तो केवल वनस्पति या झाड़ कहोगे यदि यह भी पता है कि वृक्ष का भी ज्ञान है तो आप कहोगे कि हाँ भई यह नीम का पेड़ है। जब आपको नीम का पेड़ पता है तो ही पेड़ बाहर दिखेगा, यदि नीम का पेड़ नहीं पता है, तो बाहर केवल पेड़ दिखेगा, नीम का पेड़ के बजाए आप यह कहोगे कि कोई सा झाड़ है। जैसे किसी को अरुकेरिया का पेड़ दिखे और उसे अरुकेरिया का पता न हो तो केवल पेड़ दिखेगा, पेड़ की जाति नहीं बता पाएगा। ठीक इसी प्रकार जितना भी ज्ञान बाहर दिखता है, वह पहले हमारे अन्दर होता है तो बाहर दिखता है, यदि अन्दर ज्ञान न हो तो बाहर नहीं दिख सकता। इसी प्रकार आम का वृक्ष, आम का जाति आदि का ज्ञान होने पर ही बाहर दिख पाएगा। इसी प्रकार सुन्दरता आदि का ज्ञान अन्दर होने पर बाहर दिखेगा। इसी प्रकार मान, अपमान आदि का ज्ञान अन्दर होने पर बाहर मालूम होगा। इसी प्रकार अन्य सभी बातों को जानें। तो ज्ञान है हमारे अन्दर, दिखता है बाहर। अब बताते हैं कि प्रबुद्ध क्या करता है, वह किस प्रकार जगत को देखता है। तो कहते हैं कि

प्रबुद्धः सर्वदा तिष्ठेज्ज्ञानेनालोच्य गोचरम्।

एकत्रारोपयेत्सर्वं ततोऽन्येन न पीड्यते।।४४।।

प्रबुद्ध सर्वदा ज्ञेय (बाहर दिखने वाली वस्तु या भाव) को ज्ञान रूप (अपना ही रूप) कर देता है, उसको एक ज्ञप्तिसमुद्र के रूप में अर्पित कर देता है, इसलिए वह एक ही जगह पहुँचता है। इसलिए वह पीड़ित नहीं होता है, कोई वस्तु हो तो पीड़ा दे वस्तु तो रहती नहीं।

अब जैसे एक बारिक बात को समझने का प्रयास करते हैं, जैसे मान लो कि किसी की भगवान या ईश्वर आदि किसी पर भी असीम श्रद्धा हो जाए, अपनी बुद्धि गुरु या ईश्वर या भगवान के चरणों में पूरी समर्पित हो जाए, उसके जीवन में कुछ भी हो, वह उसे भगवान की कृपा, प्रसाद या इच्छा समझे, तो क्या कोई भी घटना उसे दुःख, कष्ट या तकलीफ पहुँचा सकती है?, नहीं, क्योंकि उसे तो प्रत्येक कार्य में ईश्वर की कृपा या इच्छा ही दिखाई देती है। उसने अपने अन्दर एक की वृत्ति या विचार को जगह दी, कि जो कुछ भी होता है या हो रहा है वह ईश्वर की इच्छा है, मेरे भगवान की इच्छा है, मेरे इष्ट की इच्छा है या मेरे गुरु की इच्छा है। उसकी बुद्धि तो पूरी तरह समर्पित है, बुद्धि समर्पित है तो मन को तो कोई जगह है ही नहीं, जब मन के लिए कोई स्थान है ही नहीं तो फिर बचा क्या? सारी गड़बड़ तो मन की ही थी। तो ऐसा भक्त या साधक प्रत्येक कार्य को, प्रत्येक स्थिति को एक ही जगह ले जाता है कि सब ईश्वर या भगवान की इच्छा है। ठीक इसी प्रकार प्रबुद्ध की जो वृत्ति या विचार बनता है कि सारा जगत जो है वह मेरा ही ज्ञान है, जितना भी बाहर दिख रहा है वह मेरा ही ज्ञान है, इससे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

जैसा जब मैं मनोराज्य करता हूँ, मन ही मन में विचार करता रहता हूँ तो मेरे अलावा तो कोई होता नहीं है, मैं ही सबकुछ बन जाता हूँ, मेरा ज्ञान ही मेरे अन्दर गाड़ी, घोड़ा, रूपया, पैसा, मकान, दुकान, ऑफिस, स्त्री, पुरुष सब बन जाता है। सबसे मैं बात भी करता हूँ, आनन्द भी करता हूँ, लड़ता, झगड़ता भी हूँ। वास्तव में तो बाहर कोई नहीं है, मेरा मन ही सब खड़ा कर लेता है। मेरे अलावा कोई भी है ही नहीं।

स्वप्न में भी मेरे अतिरिक्त कोई नहीं है, यह पता जागने पर चलता है। स्वपन में कोई समस्या नहीं है, भले ही मालूम होती है। इसी प्रकार जाग्रत में भी कोई समस्या नहीं है, मालूम भले ही होती है। तो प्रबुद्ध क्या करता है, साधक क्या करता है कि बाहर दिखने पर भी वह एक विचार बना कर रखता है कि दुनिया भले ही बाहर दिख रही है पर बाहर है नहीं, मेरे अन्दर की ही दुनिया बाहर दिख रही है।

जैसे मान लो कि आपका मकान है, आपने कहा कि यह मेरा मकान है, कई साल तक आप उस मकान में रहे, उसे अपना समझते रहे, उस मकान के सामने पड़ोसी ने कचरा डाल दिया तो आपने उसे समझाया कि यह कचरा डालने का स्थान नहीं है, यदि वह न समझे, न माने तथा पुनः कचरा डाले तो झगड़ा भी हो सकता है, मारपीट भी हो सकती है आदि आदि। ठीक है, स्पष्ट है। अब मान लो कुछ समय बाद आपने नया मकान कहीं और खरीद लिया तथा इस मकान को बेच दिया, अब वह मकान किसी और का हो गया, अब उस मकान के सामने कोई कचरा डाले तो आपको फर्क नहीं पड़ता, आप पुराने मकान के पड़ोसी से झगड़ा नहीं करते, तो इस दृष्टान्त या उदाहरण से क्या जाना कि जब तक आप उस मकान को अपना मानते थे, उसे अपना करके समझते थे, उस मकान के बनने, बिगड़ने पर उससे प्रभावित होते थे, अच्छा, बुरा अनुभव करते थे, मकान तो अभी भी है, परन्तु आपने अपनी ममता उससे निकाल ली, उस मकान में से ममत्व निकाल लिया, तो उसके बनने, बिगड़ने से आपको फर्क नहीं पड़ता। देखो मकान पहले भी था, अभी भी है, आपने ममत्व किया, उसे अपना माना या जाना तो उसके बनने बिगड़ने पर प्रभावित हुए। तो मकान तो दिखा बाहर पर था कहाँ अन्दर, जब आपने उसमें से अपना ममत्व बाहर निकाल लिया तो मकान बाहर रहे, न रहे आपको फर्क नहीं पड़ा। (श्लोक के साथ तादात्म्य बैठाना है।) मेरे ही शरीर विषयक अहंकार के कारण इस मकान को मैं अपना करके कहता हूँ, जब मैं अपने वास्तविक रूप में स्थित होऊँगा, संकुचन छोड़ दूँगा, तो मकान से ममत्व के लिए जगह ही नहीं रहेगी।

तो मुमुक्षु या साधक क्या करता है कि वह बाहर दिखने वाले सभी विषय को उसके सत्ता रूप में लीन कर देता है, पहुँचा देता है। प्रत्येक चित्र को पर्दे में लीन कर देता है, उसकी दृष्टि प्रत्येक स्थिति में पर्दे को ही लक्षित करती है, देखती है, प्रत्येक भाव, प्रत्येक विचार, प्रत्येक ज्ञान, प्रत्येक चित्र को वह सत्ता या पर्दे में ही लीन करता है। आभूषण की प्रत्येक आकृति को वह सत्ता (चाँदी) में लीन करता है। जब प्रत्येक चित्र पर्दा की दिखेगा तो भेद नहीं होगा, तो अच्छा या बुरा होने का सवाल ही नहीं उठता तो उसे किसी भी काल में पीड़ा नहीं होती है। वह कभी भी पीड़ित नहीं होता है।

प्रबुद्धः सर्वदा तिष्ठेज्ज्ञानेनालोच्य गोचरम्।

एकत्रारोपयेत्सर्वं ततोऽन्येन न पीड्यते।।४४।।

२१-३८

प्रबुद्ध असंकुचित शक्ति वाला है। क्योंकि उसने उपाधि को छोड़ दिया है। परोक्ष ज्ञान हो गया तो बुद्धि ने उसको छोड़ दिया। साधना क्या है कि किसी भी चीज को स्वरूप से बाहर नहीं होने देना। ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या। ब्रह्म है और वही है, तो आपकी साधना क्या होगी। इन्द्रिय आदि के माध्यम से जो भी दिखाई देता है उसको ब्रह्म रूप करके ग्रहण करना। सुप्रबुद्ध ऐसा अभ्यास नहीं करेगा। उसका स्वभाव है। यह परोक्ष ज्ञान की साधना है।

१.४-३१

कहते है कि ज्ञान के पास यही है। वह ज्ञेय की ओर जाता है तो उसको ज्ञान रूप करके अन्दर कर देता है, उसका यह रूप नहीं रहता है। यह ज्ञप्ति रूप समुद्र में ज्ञान रूपी लहर चल रही है। यही उसकी कला है। कि प्रमेय में कभी टिकता नहीं, ज्ञेय को ज्ञान रूप कर देता है। ज्ञान ज्ञप्त समुद्र हो जाएगा।

प्रमेय को प्रमाता रूप बना देता है। विचार से कह रहा था। वह यही है। वट दिख रहा है, वट के आधार के वट ज्ञान है कि

वट ज्ञान के आधार पर वट ज्ञान है। क्योंकि वट ज्ञान को नष्ट कर दें वट का कोई सत्ता नहीं है। वट को नष्ट कर दें तो वटज्ञान नष्ट नहीं होता है। एक तो यह प्रक्रिया। दूसरी ज्ञान से सृष्टि आई कि सृष्टि से ज्ञान आया।

गीता प्रेस में जब कोई चित्र बनाना होता था तो कलाकार को श्लोक समझाते थे। अर्थ समझाते थे। उसको मूर्ति अन्दर दिखती थी, बहुत विषय में पूँछता था, जैसा अन्दर दिखता था कागज में खींच देता था।

अन्नपूर्णामें दक्षिण से कारीगर आए थे। फिर ज्ञान अन्दर हो गया। तब बाहर आया। ज्ञान रूप में आए तो बाहर आया। आप विचार करें हमारे अन्दर ज्ञान है, शब्द रूप में बताया तो दूसरे में ज्ञान गया।

जितना भी प्रमेय है, जो ठोस दिखाई दे रहा है, वह ठोस नहीं है, यह ज्ञान रूप है, अब इस ज्ञान को ज्ञप्ति समुद्ररूप में अनुभव करें।

प्रबुद्ध सर्वदा ज्ञेय को ज्ञान रूप कर देता है, उसको एक ज्ञप्तिसमुद्र के रूप में अर्पित कर देता है, इसलिए वह एक ही जगह पहुँचता है। पर्दे में केन्द्रित हों तो सब चित्रों का एक ही ज्ञान होगा। पर्दे रूप। ये कला है उसकी। इसलिए वह पीड़ित नहीं होता है, कोई वस्तु हो तो पीड़ा दे वस्तु तो रहती नहीं।

साधक के लिए उपदेश-जो ज्ञान राशि को एक तत्व में विलीन कर देता है। आगे कला समूह का वर्णन आएगा तो क्या होता है, अज्ञानी को इसका वर्णन आएगा। उसको शक्तियाँ पकड़ लेती है, तो कामक्रोध से ग्रसित हो जाता है। ११-३१ पर पूरा हुआ प्रवचन।।

शब्दराशिसमुत्थस्य शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।

कलाविलुप्तविभवो गतः सन्स पशुः स्मृतः।।४५।।

पिछले श्लोक में यह बताया कि मुमुक्षु कहाँ स्थित रहता है, संसार में रहते हुए भी जिज्ञासु के अन्दर क्या प्रक्रिया होती है यह बताया कि जिज्ञासु या मुमुक्षु सारे चित्र में पर्दा ही देखता है कि एक पर्दे के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अब यहाँ बताते हैं कि जो संसारी है उसमें क्या प्रक्रिया बनती है। किस प्रकार संसारी केवल चित्र देखने में ही लगा रहता है तथा जैसा चित्र आता है वैसी ही वृत्ति उसमें बनती है।

जैसे मान लो कि कोई फेक्टरी है, उसका कोई मालिक है वह मालिक अपने मालिक भाव में नहीं रहता है, जैसा मालिक को रहना चाहिए उस प्रकार का आचरण वह फेक्टरी में नहीं करता है। तो क्या होगा, फिर तो उसका नौकर निरंकुश हो जाएगा, नौकर पर किसी का अंकुश नहीं रहेगा, नौकर चाहे जैसा व्यवहार करेगा। फिर तो नौकर मालिक से हँसी-मजाक भी करेगा, उसके साथ खेलगा, कूदेगा, खाएगा, पिएगा, मालिक की आज्ञा का पालन भी नहीं करेगा, उसकी बात नहीं मानेगा, मालिक कुछ कहेगा तो हंसेगा भी, गुस्सा भी करेगा, वह मालिक को कुछ काम करने का भी कह सकता है, कि देखो में अभी जा रहा हूँ माली आए तो उससे कहना कि बगीचे में पानी डाल देना। इसी प्रकार ड्रायवर, माली, अन्य नौकर भी मालिक को कुछ नहीं समझेगे उसको चाहे जैसा बना देगें। स्पष्ट है या कुछ शंका है।

यही स्थिति संसार में सभी जगह बन सकती है या बनती है। जैसे स्कूल का कोई प्रिंसीपल हो वह अपने प्रिंसीपल भाव में न रहे तो क्या होगा, सभी शिक्षक व छात्र अपनी मर्जी के मालिक हो जाएँगे।

घर का मुखिया, अपने मुखिया भाव में न रहे तो घर के सभी सदस्य निरंकुश हो जाएँगें।

इन सब उदाहरणों से हम ने यह जाना कि व्यक्ति जब अपने भाव (स्वरूप, स्वभाव) में न रहे तो उसके आधीन रहने वाले निरंकुश हो जाते हैं तथा उसके मालिक बन बैठते हैं।

अब देखो इन्द्रियाँ, मन की नौकर हैं। आँख, जैसा मन कहता है जब देखता है, मन में आँख बन्द करने की इच्छा हो तो नेत्र बन्द हो जाते हैं। तो देखो मन का शासन इन्द्रियों पर है, मन अपने जगह पर रहता है तो इन्द्रियाँ उसके आदेश का पालन करती है। मन का मालिक या स्वामी बुद्धि है, विवेक है, सही व गलत को अलग करने की क्षमता है। अब यदि बुद्धि अपनी जगह पर न रहे, सही व गलत में फर्क न करे तो क्या होगा, बस मन की चलेगी, जैसा मन में आएगा, वैसा इन्द्रियाँ व्यवहार करेगी। बुद्धि से ऊपर साक्षी कहो या दृष्टा कहो वह है। अब आप दृष्टा भाव में न रहो तो क्या होगा, बस मन मालिक बन के बैठ जाएगा, जैसा वह चाहेगा, नचाएगा। अब आप मन की इच्छा पूरी करने में लगे रहोगे, वह नचाता

रहेगा।

यहाँ इस कारिका में इसी बात को कहते है कि जितना भी ज्ञान होता है वह शब्दराशि से होता है, कोई भी शब्द आया, अब यदि वह शब्द आपकी प्रशंसा का है, स्तुति का है, आपकी बढ़ाई हो रही है तो अच्छा लगा। आप खुश हो गए। कोई दूसरा शब्द आया जो आपके अपमान है, आपकी बुराई का है, तो आप नाराज हो गए, गुस्सा हो गए, झगड़ने को तैयार हो गए। तो देखो शब्दों में बैठी हुई शक्ति आपको नचा रही है। जैसा शब्द आया वैसा आप व्यवहार करने लगे। हँसने लगे, नाचने लगे, गाने लगे, रोने लगे, झगड़ने लगे, सुखी, दुःखी होने लगे। तो देखो शब्द में बैठी हुई शक्ति आपको नचाने लगी।

भोग भोक्ता के लिए है। भोग है जड़, भोक्ता है चेतन। परन्तु आश्चर्य की बात है कि भोग भोक्ता को नचा रहा है। जड़ चेतन को नचा रहा है क्यों नचा रहा है, भोक्ता अपने भोक्त भाव में स्थित नहीं है, अपने आप को पहचानता नहीं है कि सारा भोग मेरे लिए ही तो है। परन्तु आज आश्चर्य का विषय है कि भोग के पीछे भोक्ता पागल है। भोग भोक्ता को नचा रहा है।

अ से ह तक, इसमें घोरा (माया शक्ति)-अघोरा (अनुग्रह शक्ति) शक्ति है। शब्दराशि से वाक्य से शक्तिवर्ग बनेगा, हमने शब्द सुना, घोरा शक्ति है, उसके अनुसार काम-क्रोध-लोभ-मोह में पड़े। शब्द में जैसी शक्ति है, उसने आपको मूर्ख बना दिया। शक्ति ने जैसा चाहा वैसा खींच दिया। यही हो रहा है। शक्ति ने घुमा दिया। आप अपने स्वरूप को भूल गए। जैसा शक्ति ने घूमाया आप नाचने लगे। शब्द बड़ा विलक्षण है। आपका सारा वैभव लुप्त हो गया। यह पशुप्रमाता है। आधीन हो गया, तो जैसा घुमाया वैसे घूम रहे हैं।

एक बात और समझने की है, कोई भी मानस प्रत्यय ऐसा नहीं है जिसमें शब्द का अनुगम न हो। अभिव्यक्ति शब्द से होती है, शब्द से मानस प्रत्यय बनता है, शब्द में शक्तियाँ हैं, जो व्यापक स्वतन्त्र है, यह ढकता जाता है। शब्द सुनकर भाव बनाता है, विशिष्ट बनाकर, काम-क्रोध होता है, तो पशुप्रमाता बन गया। अब जैसा शब्द नचाए नाचते हैं, जैसा मन करें वैसा करना पड़ता है।

श्लोक ४५ की व्याख्या–शब्द राशि से क आदि का भूत समुदाय उत्पन्न होता हैं। यदि शक्ति समूह का बाहरी भोग्य हैं। इससे वशीभूत होकर पुरुष अक्षरों की कलाओं में खोकर अपने स्वभाव में गिर जाता हैं, तथा शिव से पशु हो जाता हैं।

अपना स्वभाव हैं सत् चित्त आनंद। परन्तु हम दुःखी हैं, ऐसा क्यों हैं? इसे एक दो उदाहरणों से समझने का प्रयास करेगें। जैसे विद्युत की सार्मथ्य असीम हैं परन्तु जब तारों में बहती हैं, तो उसकी सार्मथ्य का पता नहीं चलता, ज्ञात नहीं होता हैं। वही विद्युत जब ५ वॉल्ट के बल्ब में जलती हैं। तो हम कहते हैं कि हैं विद्युत हैं तथा ५ वॉल्ट का प्रकाश भी दे रही हैं। तो देखो विद्युत की क्षमता हैं असीम, परन्तु व्यक्त या महसूस हो रही हैं ५ वॉल्ट की । ५ वॉल्ट की क्षमता विद्युत की ना होकर ढाँचे की हैं, बल्ब की हैं। अब ५ वॉल्ट का बल्ब हटाकर ५० वॉल्ट या १००० वॉल्ट का बल्ब लगा दो तो उतनी ही क्षमता प्रकट हो जाएगी। ये क्षमता ढाँचे या बल्ब की हैं विद्युत में तो असीम सार्मथ्य हैं।

जिससे संबंध बनाया वैसा या उतना गुण या सार्मथ्य अभिव्यक्त हो गया। कमजोर बल्ब से कमजोर अभिव्यक्ति हुई। बलवान से बनवाया तो अधिक अभिव्यक्ति हुई। जबकि विद्युत की सार्मथ्य तो असीम हैं।

एक और उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं कि आप पलंग पर सो रहे हैं, आपको कोई कठिनाई नहीं हैं पेट भरा हुआ हैं आदि-आदि। परंतु यदि स्वप्न आए और स्वप्न में भूख लगे और व्यक्ति भोजन के लिए भटकता फिरे तो देखों तादात्मक या संबंध जब दूसरी देह या शरीर से बनाया तो उसके गुण-धर्म को अपना मानकर भूखा, दुःखी, सुखी, निर्धन, धनी, रोगी, निरोगी अपने आपको महसूस करने लगता हैं। जैसे कि मान लो.....स्पष्ट हैं। या कुछ शंका हैं कम्प्युटर में लिखा हैं। आगे का भी जोड़ना हैं।

अब श्लोक में शब्द आया कि ये सारा भोग्य या भोग शब्द राशि से उत्पन्न हुआ हैं। अब यदि व्यक्ति शब्द राशि जहाँ से उत्पन्न हुई हैं, वहाँ न बैठे तो शब्दों में बैठी हुई शक्ति उसे नचाती हैं। थोड़ा सा बारिकी से समझते हैं जैसे एक शब्द आया प्रशंसा का अरे वाह आप तो बहुत बुद्धिमान हैं, बहुत सुन्दर हैं, या बहुत अच्छे हैं। तो आप फुलकर कुप्पा हो गए। इसमें क्या हुआ कि शब्द में जो शक्ति बैठी थी उसने अपना कार्य कर दिया। अब मान लो किसी समय ऐसा शब्द आया कि तु नालायक हैं, तुम कामचोर हो, तुममें अक्ल नहीं हैं या ऐसा ही अन्य कोई शब्द तो क्या हुआ कि शब्द में जो भोरा शक्ति थी, उसने अपना काम कर दिया।

इसी प्रकार सामने कोई रूप आया, दृश्य आया आप आकर्षीत हुए बस भोग के पीछे लगे भागने। तो क्या हुआ अपना जो भोक्ता भाव था वो चला गया स्वामी भाव विलुप्त हो गया और भोग का दास हो गया। सारा भोग भोक्ता के लिए हैं। परन्तु आश्चर्य की बात हैं। कि भोग भोक्ता को नचा रहा हैं। व्यक्ति रूप, रस,गंध, स्वाद, स्पर्श, पद, मान आदि के पीछे पागल हैं।

जब आपका जन्म हुआ तब आप सामान्य थे तब आप अपने स्वभाव में थे अनन्त सार्मथ्य वान थे। अब देखो कैसे धीरे-धीरे जो महान् व्यापक आकाश था उसे भटाकाश बनाया जा रहा हैं। तो पहले भेद किया और बताया कि आपका नाम रमेश हैं। अब यह नाम क्यों दिया? दिया व्यवहार के लिए। नाम दिया देह को तो आप पुल्लिंग हुए तो देखो चेतन से पुल्लिंग में विशेष रमेश फिर जाति विशेष की ओर विशेष बनाया तो कहा चौबे, शर्मा, वर्मा तो जो आपकि व्यापकता थी असे धीरे-धीरे सीमित कर दिया। विशीष्ठ कर दिया और विशीष्ठ किया तो बताया कि आपके पिता का नाम यह हैं। माता का नाम यह हैं। बाद में कुछ और पढ़ लिख गए तो और विशीष्ठ बन गए, तो यह सारा कार्य था व्यवहार के लिए। उस व्यवहार को सच मानने से आप सीमित हो गए। अपने स्वभाव को भूल गए। जब इन्द्रियों से संपर्क हुआ तो इन्द्रियों के माध्यम से देखने सुनने आदि का व्यवहार करने लगे और अपने स्वभाव को भूलकर इन्द्रियों के माध्यम से भोग आसक्त हो शिव भाव को छोड़कर पशु भाव में चले गए।

परामृतरसापायस्तस्य यः प्रत्ययोद्भवः।

तेनास्वतन्त्रतामेति स च तन्मात्रगोचरः।।४६।।

अपना मूल स्वरूप या स्वभाव कैसा है वह परामृत रस वाला है, परा अमृत रसवाला है, कभी भी समाप्त न होने वाला अमृत रस है। यह स्थिति कब है, जब आप स्वरूप में स्थित हैं, पर्दे में स्थित हैं। आपका स्वभाव है सत्, चित्, आनन्द। जब आपका जन्म हुआ, उसके बाद क्या हुआ, जैसे-जैसे आप बड़े हुए, आपको बताया गया कि आपका नाम रमेश है, आप पुर्लिंग हो, आप मनुष्य हो, आप इस जाति के हो, तो धीरे धीरे आपके स्वरूप पर आवरण सा डाला जा रहा है, धीरे धीरे आपको संकोट उत्पन्न हो रहा है। जो व्यापकता थी उसके संकुचित बनाया जा रहा है (व्यवहार के लिए)। जो चलो यही समझो कि आप हो जीव या प्राणी। परन्तु जीव में संकुचित होकर, मनुष्य कहलाए, और अधिक संकुचित हुए तो पुरुष कहलाते हो। तो देखो किस प्रकार सामान्य से विशिष्ट बनते जा रहे हो। फिर बताया कि आप अमुक के पुत्र हो, आपकी अमुक माता है, अमुक आपकी जाति है, आप अभी पाँच साल के हो, आप अमुक अधिकारी के पुत्र हो, जितनी भी ये उपाधियाँ हैं, वे सब आपको विशिष्ट ही बनाती है तो देखो आपका स्वरूप है परामृत। जब आपने शरीर को मैं करके जाना, माना, उदाहरण के लिए रमेश। यह रमेश नाम दिया था शरीर को, व्यवहार करने के लिए। परन्तु व्यवहार करते करते ऐसा हो गया कि अब कोई भी पूछता है कि आप कौन? तब आप तुरन्त कहते हो कि रमेश। आप अपने स्वरूप को भूलकर देह या शरीर से गहन तादात्म्य करके अपने आपको शरीर मानने लगे। यही प्रत्यय का उद्भव है। प्रत्यय का उत्पन्न होना है। अब प्रत्यय उत्पन्न हो गया, आप अपने को शरीर मानने लगे, तो शरीर के उत्पन्न होने से अपनी उत्पत्ति तथा शरीर के नाश होने से अपना नाश मानने लगे। शरीर में कष्ट होने पर स्वयं में कष्ट मानने लगे।

जब आपने शरीर को मैं माना तो क्या हुआ, जो अपनी व्यापकता या स्वतन्त्रता थी वह संकुचित या पराधीन हो गई। जब आपने शरीर को मैंने माना तो शरीर जो कर सकता है वही आप कर सकते हो। शरीर में क्या है तो इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियाँ अर्थात् आँख, नाक, कान, जीभ व त्वचा। ये इन्द्रियाँ क्या करती हैं तो इन्द्रियाँ देखने, सुनने, सूँघने, चखने तथा स्पर्श करने का कार्य करती है। तो आप वही करने लगे। जैसे आँख से जब देखने लगे तो चित्र या रूप जो आपके सामने आया वह अच्छा लगा तो आसक्ति हुई, बुरा या खराब लगा तो द्वेष हुआ, बस अब चक्र चालु हो गया। बस इससे धीरे धीरे राग, द्वैष, आसक्ति, काम, क्रोध, लोभ मोह की उत्पत्ति होने लगी, आप चक्र में फँस गये।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि आपका स्वरूप कहीं गया नहीं है, आपने देह को मैं करके संबंध बनाया तो देह के गुण प्रकट हो गए। आपने स्वरूप से संबंध नहीं बनाया इसलिए स्वरूप के गुण प्रकट नहीं हो रहे हैं। आपने दुष्ट से संबंध बनाया तो दुष्ट के दुर्गुण आपके अन्दर प्रकट हो गए, साधु से सम्बन्ध बनाते तो साधु के गुण आपमें प्रकट होते।

तो इस कारिका में हम ने क्या जाना, हम ने जाना कि अपना स्वरूप है कभी भी समाप्त न होने रस वाला, परन्तु जब हम ने शरीर को मैं माना तो अपनी स्वतन्त्र समाप्त हो गई तथा शरीर की इन्द्रियों से व्यवहार करना आरंभ हो गया, अब इन्द्रियों

की जितनी सीमा है उतना ही देख, सुन, सूँघ व स्पर्श कर पाते हैं, संकुचित हो गए।

स्वरूपावरणो चास्य शक्त्यः सततोत्थिताः।

यतः शब्दानुवेधेन न विना प्रत्ययोद्भवः।।४७।।

शब्दों में बैठी हुई पुरुष की शक्तियाँ लगातार स्वभाव को ढाकने में लगी रहती हैं। इन्हीं शक्तियों को माया शक्ति कहते हैं। ये शक्तियाँ क्या करती हैं, आपके स्वरूप को ढाकती हैं। आपके अनुभव को झुठला देती हैं। आपका अनुभव है कि जगत की इच्छा दुःख का कारण है। जगत से तमाम थप्पड़ खाता है, माया इन अनुभवों को झुठला देती है। इसलिए मनुष्य पुनः जगत की इच्छा करता है, पुत्र से मोह करता है, स्त्री से मोह करता है, मोह के वशीभूत होकर दुःख या कष्ट उठाता है, मान, अपमान सहन करता है। फिर भी मोह से निकल नहीं पता है यही माया शक्ति है।

मन इसका नौकर है, कार्य करने के लिए मिला है। परन्तु इस पर शासन कर रहा है। सारा जगत इसके लिए है, सारा भोग भोक्ता के लिए है, परन्तु आश्चर्य की बात है कि भोक्ता भोग के पीछे पागल हो रहा है। भोग है जड़, भोक्ता है चेतन। आप हो भोक्ता, आप हो चेतन। सारे भोग हैं जड़, सारे भोग आपके लिए बने हैं। गाड़ी, मकान, दुकान, बंगला, कम्प्यूटर, हवाई जहाज सब आपके लिए है। बड़े आश्चर्य की बात है ये सब जड़ पदार्थ चेतन को नचा रहे हैं यही माया शक्ति है। ये शक्तियाँ है चेतन की ही। तो अभी तक हम ने क्या समझा कि अपनी ही माया शक्ति, अपने ही स्वरूप को ढाकने में लगी है।

कोई भी शक्ति होती है तो उसे बैठने के लिए स्थान चाहिए, व्यक्त होने के लिए माध्यम चाहिए। तो शब्द इन शक्तियों का शरीर है, शब्द इन शक्तियों के बैठने का स्थान है। शब्दों में बैठकर ही ये शक्तियाँ कार्य करती है।

ज्ञान होने के लिए शब्द आवश्यक है। और शब्द में शक्ति बैठी हुई है। जहाँ शब्द का प्रयोग हुआ, तो शब्द में बैठी हुई शक्ति ने अपना कार्य दिखाया।

जिसे हम पिछली कारिका में देख चुके हैं कि शब्द में बैठी हुई शक्ति किस प्रकार अपना कार्य करती है।

तो इस कारिका में हम ने देखा कि पुरुष की शक्तियाँ शब्दों में बैठकर अपना कार्य करती है। शब्दों के बिना प्रत्यय उत्पन्न नहीं हो सकता है।

ऐसा लगता है केवल शब्द में ही नहीं बल्कि रूप रस गन्ध, स्पर्श में भी शक्तियाँ बैठी हुई है तथा अपना कार्य करती है, तथा ये भी ज्ञान का कारण बनती है। तथा स्वरूप को आवृत करने में लगी रहती हैं।

इसी की ये शक्तियाँ निरन्तर स्वरूप के आवरण में लगी रहती है, चित्र हमेशा पर्दे को भुलाने में लगी रहती है। आवरण करने में हेतु ये शक्तियाँ हैं, जिस समय आवरण करती है, उस समय भी स्वरूप कहीं जाता नहीं है,

यः शब्दानुवेधेन न विना

शब्दानुवेधन से ही प्रत्यय उत्पन्न करती रहती है। उनको (प्रत्ययों को) आत्मसात नहीं कर पाते हैं तो भटक जाते हैं।

अगली कारिका को देखने के पहले आइए उसका आधार तैयार करें। आप शान्त बैठे हैं, मन में कोई भी विचार नहीं है, फिर एक संकल्प उठा। एक विचार उठा। जैसे ही विचार उठा, विचार आपके सामने आया, विचार उठने से पहले वह विचार आपके अन्दर ही था, वहाँ से कोई भी विचार उठ सकता था, परन्तु एक विशेष विचार उठा, विचार बाहर हो गया, सामने आ गया। आप विचार को देखने वाले हो गए। तो देखो एक के अन्दर ही दो हो गए। एक विचार तथा दूसरा विचार को देखने वाला। एक विचार अर्थात् ज्ञेय (जो जाना जा रहा है) एक विचार को जानने वाला ज्ञाता (दृष्टा)। तो देखो, एक में ही दो हो गए। जब कोई भी विचार अन्दर नहीं था, तो स्वरूप स्थिति थी, अनन्तता थी, व्यापकता थी। जैसे ही विचार उठा, सीमितता आ गई, एक विचार में सीमितता आ गई, सिमट गए, संकुचित हो गए। तो अभी तक क्या समझा कि संकल्प या विचार उठने के पहले व्यापकता थी, विचार उठा तो सीमितता आ गई।

विचार उठा, जैसे ही विचार को अलग करके देखने लगे, बस गड़बड़ हुई, स्वातन्त्र गया, स्वरूप को भूला। खुद के स्वरूप को कहते हैं अहं, उससे जो भी कुछ बाहर है उसे कहते हैं इदं। जब तक आप अपने आप में स्थित थे, स्वरूप में स्थित थे, तो अहं में स्थित थे, वह इदं (विचार) अन्दर ही था। परन्तु जैसे ही विचार बाहर आया, अलग करके देखा या दिखा तो वह इदं हो गया। जब वह इदं हुआ, और आप इदं को देखने लगे, आप यह भूल गए कि यह इदं, अहं में से ही निकला है, अहं

ही इदं करके दिख रहा है, पर्दा ही चित्र रूप में दिख रहा है, चित्र अलग नहीं है। जब आप चित्र देखने में लगे, बस माया शक्ति ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। जैसे ही इदं को आपने अलग जाना, बस गड़बड़ हुई।

तो जैसे ही विचार अलग हुआ, विषय बना, विषय का ज्ञान बना, विषय के बारे में सोचना आरम्भ किया तो आसक्ति उत्पन्न हुई, आसक्ति से कामना और कामना से क्रिया उत्पन्न हुई, बस चक्र चालू, इसी को कारिका में कहा यह शिव की ही शक्ति है, इसी की शक्ति है, वही पशु को क्रिया में लगा रही है तथा बन्धन में डाल रही है। जब तक चित्र देखने में लगा है, पर्दे को भूला है, पर्दे को चित्र से अलग करके जानता है, मानता है, तो बन्धन देने वाली है।

सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी।

बन्धयित्नी(त्री) स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका।।४८।।

अपनी ही (शिव की ही) ये क्रिया कराने वाली शक्तियाँ पशु को क्रिया में लगाने वाली होती हैं। तथा बन्धन का कारण बनती है। ये जीव भाव में लगाने वाली होती हैं।

यदि साधक मुड़ जाए, अपने अहं भाव में स्थित हो जाए, पर्दे में स्थित होकर चित्र को देखे कि देखो सभी चित्र पर्दे पर स्थित हैं, तो क्या होगा, यह सिद्धि को देने वाली होंगी। जब साधक अहं भाव में स्थित होगा ये शक्तियाँ साधक को सिद्धि अर्थात् सफलता देने वाली होती हैं। जब अहं में रहकर इदं को देखता है कि सारा इदं मेरे से ही उत्पन्न हुआ है, मेरा ही रूप है, मैं ही हूँ, तब ये शक्तियाँ सिद्धि देने वाली होती हैं। जब हम विचार को इस प्रकार देखें कि यह विचार मुझसे ही तो उत्पन्न हुआ, मैंने जब इस प्रकार का विचार किया तो ये विचार उत्पन्न हुआ, मैं जब तक चाहूँ विचार से खेलूँ, जब चाहे समाप्त कर दूँ, ये मेरा स्वातन्त्र हैं, यही सिद्धि है।

अतिरिक्त है- सेयं क्रिया ये जो क्रियात्मिका शक्ति, अपनी हैं, शिव की है, ये पशु प्रमाता के साथ रहती है। अब यही ज्ञान क्रिया में आ गया है। ये क्या करती है, ज्ञाता सिद्धि को पाती है,... अब उसके मार्ग में जो अनुकरण करने वाला है तो उसको बन्धन करती हैं, जो जान लेने पर सिद्धि का हेतु है। ज्ञात होने पर सिद्धि, अज्ञात होनेपर बन्धन,

ये क्रियास्वभाव वाली पशुवर्धनी शक्ति है, भेद उत्पन्न करने वाली, । ये ज्ञान क्रिया (सन्ताक) सन्तान हैं, उसमें चलने वाली जीव कला नहीं है, शिवकला है, शिवकला व्याप्त होकर जीवकर बनती है, नहीं तो नहीं, । परिछिन्न में हो गई जीवकला मालूम होती है। जिसमें शिवकला की व्याप्ति न हो ऐसी कोई जीवकला नहीं है। उसके बिना नहीं हो सकती है। वही अज्ञान बन्धन का कारण है, जान लिया हो शक्ति के रूप में ज्ञात होने पर अपर, पर दोनों प्रकार की सिद्धि देने में समर्थ है।

तन्मात्रोदयरूपेण मनोऽहंबुद्धिवर्तिना।

पुर्यष्टकेन संरुद्धस्यदुत्थं प्रत्ययोद्भवम्।।४९।।

पिछली कारिका में हमने देखा कि संसारी व्यक्ति के लिए संकल्प बन्धन का कारण हो रहा है, वही संकल्प योगी के लिए सिद्धि देने वाला है। हमने जाना कि जब साधक संकल्प को अलग करके देखने लगा तो बन्धन देने वाला हुआ, संकल्प को अपने से उत्पन्न करके, अपना ही रूप करके देखा तो सिद्धि देने वाला हुआ। अब बताते हैं कि संकल्प जो की मन की शक्ति है वह किस प्रकार से बन्धन का कारण होता है। जैसे ही कोई विषय आया तो क्या हुआ, विषय को ग्रहण करने के लिए इन्द्रियों की आवश्यकता हुई, तो इन्द्रियाँ तो इसके पास हैं ही। इसके पास पाँच इन्द्रियाँ हैं आँख, कान, जीभ, त्वचा, नाक। तो विषय आया, इन्द्रियों ने ग्रहण किया, मन तक पहुँचाया, अनुभव हुआ, राग, द्वेष, काम, क्रोध, आदि वृत्तियाँ बनी तथा यह जाल में या चक्र में फंसा। तो ये जो पाँच इन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि व अहंकार हैं इन्हें कहते हैं पुर्यष्टक। ये आठ हैं। तो हो क्या रहा है, हो ये रहा है कि कोई भी विषय सामने आया तो इन्हीं आठ में उलझ गया। तो जो हमारा स्वरूप था उस ओर ध्यान न जाकर, इन्हीं आठ में बंध गया। तो अपना स्वरूप भूलकर क्या हुआ, बस इन आठ में ही लग गया, तो चक्र में पड़ गया।

इसे उदाहरण के द्वारा बताते हैं कि जैसे कोई रथ है वाहन है, उसमें पाँच घोड़े जुते हुए हैं, उन घोड़े की लगाम थामें हुए सारथी रथ चला रहा है, तथा जो रथ का मालिक है उसे रथी कहते हैं वह बैठा है।

अब देखो थोड़ा आराम से धीरे धीरे समझने का प्रयास करो, अच्छा जरा सोचो तो रथी(स्वामी, मालिक) है क्या वो रथ है, यदि वो अपने आप को रथ समझने लगे तो क्या होगा, रथ के बनने बिगड़ने से, टूटने फूटने, खरोंच लगने से स्वयं में बनना

बिगड़ना, टूटना फूटना, खरोंच मानने लगेगा। यदि रथी अर्थात् मालिक अपने आप को घोड़ा समझने लगे तो क्या होगा, तब भी उचित नहीं है, इसी प्रकार वह अपने आप को सारथी समझेगा तो भी ठीक नहीं है।

इसी प्रकार अपना यह शरीर है रथ, इन्द्रियाँ हैं घोड़े तथा मन है इन घोड़े की लगाम तथा बुद्धि है सारथी, और आप है इन सबके मालिक। अब गड़बड़ क्या है, कभी आप शरीर (रथ) को मैं मान लेते हो जो की किसी भी काल में आप हो ही नहीं सकते, कभी आप इन्द्रियों को, कभी मन को मैं करके मान लेते हो, कभी बुद्धि में अहंता कर लेते हो जबकि आप इन सबके मालिक हो स्वामी हो। इन्हीं आठ में बँधे होना पुर्यष्टक में बँधे होना है। इनमें बँधे रहने से ही प्रत्यय का उद्भव होता है। अनात्म में आत्मा मानना यही माया है, शरीर, मन, बुद्धि, आप कभी हो ही नहीं सकते, और यही अपने आप को मानते हो यही माया है।

तन्मात्रोदयो. क्या है यही पुर्यष्टक का आश्रय ले लिया, अब इसी रूप में आ गया, स्व को तो भूल गया। पर्युष्टक के साथ अहंता केन्द्रित हो गई तो शरीर के साथ (पंचतन्मात्रा व तीन गुण) स्थूल व सूक्ष्म में उदय हो जाता है, इसी में अहंता केन्द्रित हो जाती है, अभी स्थूल में अहंता केन्द्रित होकर व्यवहार करती है। तत गुण का आश्रय लेकर। यहीं पुर्यष्टक ....

अहंता यहीं केन्द्रित होने से इनकी शक्ति के अनुसार अहंता संकुचित हो गई। अहंता संरुद्ध हो गई, अब मन अहंकार व बुद्धि इन तीन का ही परामर्श है, इसी से चलता है, मन ने कहा, बुद्धि ने जैसा कही है वैसी चलता है, व्यापक शक्ति व स्वरूप विस्मृत है, वेदान्त में भी यही बन्धन है। अहंकार से शरीर तक हमारी अहंता केन्द्रित होने से यही बन्धन है, अज्ञान के कारण इसमें अहंता हो रही है, नहीं तो इसमें अहंता क्यों होना। करण के साथ क्यों जुड़ जाना है, रथ के साथ क्यों जुड़ गई, अज्ञान के कारण, मोह के साथ, । स्वरूपाबोध हो अहंता का संबंध समाप्त होगा, तो ममता के साथ संबंध समाप्त होगा, यही मुक्ति है। इसी का नाम माया था। अनात्म शरीर आदि है, उसमें आत्म बुद्धि का नाम माया है, इसी ने सारा का सारा संसार कल्पित किया है। माया को अनुभव करना हो तो माया यही है। इसी ने सारे संसार की कल्पना की है।

भुङ्क्ते परवशो भोगं तद्भावात्संसरत्यतः।
संसृतिप्रलयस्यास्य कारणं संप्रचक्ष्महे।।५०।।

इस शरीर के साथ संबंध बनाया, इन्द्रियों के साथ संबंध बनाया, मन बुद्धि के साथ संबंध बनाया तो जैसा अनुभव होता है, वैसा अपने आप को महसूस करता है, जैसा भोग मिलता परवश होकर वैसा भोग भोगता है, सुख दुःख का अनुभव करता है, शरीर के मरने पर मरने का अनुभव करता है, मरता भले ही नहीं है, परन्तु अनुभव करता है। अतः अब इसके संसार के प्रलय या समाप्ति का उपाय बताना चाहिए।

जिसके साथ संबंध बनाता है वैसा ही तो अनुभव करेगा।

अहंता का संबंध जैसा होगा, वैसा अनुभव होगा। परवशो भोगं भोगते.. क्योंकि तद्भाव वाला हो गया इसी से संसर्ग से ऐसी स्थिति हो जाती है। इसलिए संसार में पर्युष्टक भाव से संबंध के कारण ऐसा होता है। इसको दूर करने का कारण बताना चाहिए।

इस संसार के विनाश का कारण कहना चाहिए।

यदा त्वेकत्र संरूढस्तदा तस्य लयोदयौ।

नियच्छन्भोक्तृतामेति ततश्चक्रेश्वरो भवेत्।।५१।।

इसके लिए बहुत बड़ा साधन नहीं करना है, आगम के अनुसार, प्रक्रिया सारी की सारी बता चुके हैं। संकेत इतना ही करना है कि जहाँ पर चित्र दिख रहा है वहीं पर पर्दा है, जहाँ घट दिख रहा है वहीं मिट्टी है, जहाँ आप अहंता किए हैं वहीं आपका स्वरूप है, कहीं दूर नहीं है। जहाँ आपको लहर दिख रही है वहीं समुद्र है। जहाँ प्रतिबिम्ब दिख रहा है, वहीं दर्पण है। और दर्पण ही है। जो आप नहीं हो वही पता चल रहा है, जो है वह मालूम नहीं हो रहा है,। आप शरीर नहीं हो सकते हैं यह अकाट्य सत्य है। शरीर जल जाता है यहीं, परन्तु वही सत्य मालूम हो रहा है।

दर्पण ही चित्र करके प्रतिबिम्ब करके दिख रहा है, है दर्पण ही वही प्रतिबिम्ब करके दिख रहा है। वही तल तक जाना है. चाहे स्थूल या सूक्ष्म पुर्यष्टक में स्थित हों।

जहाँ बल्ब है वहाँ प्रकाश मालूम हो रहा है। जहां आपकी अहंता केन्द्रित हैं, वही से अन्तर्मुख हो जाओ। पृथक होने की आवश्यकता नहीं है, यह तो अपनी शक्ति रूप में अभिव्यक्त हो रहा है तो आप चक्रेश्वर हो जाएगे। नहीं तो इसी प्रकार परवश होकर भोग चलता रहेगा। केन्द्रित हो गए, आधार को पकड़ लिया तो चक्रेश्वर हो गए। सभी चक्र तो आपकी शक्ति से चल रहे हैं। आप उसके आधीन नहीं है, उसी से सारा का सारा चल रहा है, यही अनुभूति में अन्तर हो गया है।

ज्ञान से ऐसा हो जाता है।

जब जो एकत्र सूक्ष्म या स्थूल चित्त लीन हो गया , जो बाहर था सत्ता में चला गया तदा.. तो प्रत्यतोदय का लय-उद्भव के नियमन करने वाले हो गए। इसके नियामक आप हो गए।

वास्तविक भोक्तृता को प्राप्त हो जाता है, तो चक्रश्वेर को गया। ईश्वर हो गया।